52

२३२

१०२४२

6282

सड़क के किनारे

२३२
कहानी
८२४२

८२४२
दिनांक

सड़क के किनारे

[मण्टो की पन्द्रह प्रतिनिधि कहानियों का संग्रह]

२३२
कहानी

८२३२

मण्टो

नवयुग प्रकाशन, दिल्ली

222
कहानी

अनुक्रम

८२८२

जीवन-परिचय	७
१. सौ कैंडल पॉवर का बल्ब	१७
२ मुदफरेब	२७
३ बर्मी लड़की	३७
४. गुड़िया	४६
५ फोभा बाई	५६
६. बादशाहत का खात्मा	७१
७. मिश्की	८५
८. शादी	९७
९ महमूदा	११३
१०. शांति	१२३
११. राम खिलावन	१३५
१२. औरत जात	१४५
१३. अल्ला दिता	१५३
१४. झूठी कहानी	१६३
१५. सड़क के किनारे	१७५

१८४२

जीवन परिचय

सआदत हसन मण्टो का जन्म ११ मई १९१२ ई० में समराल जिला होशियारपुर में हुआ था। उनके पिता सम्पन्न घराने से सम्बन्ध रखते थे और स्वभावतया बड़े कठोर-हृदयी थे। माता पिता के विपरीत, सर्वथा शान्तिप्रिय तथा कोमल-हृदया थीं। मण्टो अपने माता पिता की अन्तिम सन्तान थे।

उनके दो बड़े सौतेले भाई विदेश में उच्च शिक्षा के लिए गये हुये थे किन्तु मण्टो को अपनी प्रखर बुद्धि और पठन-पाठन से अभिरुचि होते हुए भी बाहर तो क्या यहां भारत में भी उच्च शिक्षा का अवसर प्राप्त नहीं हुआ था। अमृतसर से किसी-न-किसी तरह मैट्रिक की परीक्षा पास करके वह मुस्लिम यूनिवर्सिटी अलीगढ़ में इण्टर साइंस में दाखिल हुए किन्तु उनके भाग्य में विश्वविद्यालय की डिग्री प्राप्त करना नहीं अपितु इस विशाल जन-समुदाय के जीवन का चितेरा बनना था। अत: पढ़ाई अधूरी छोड़ कर ही वह अलीगढ़ से दिल्ली आ गये और वहां आकर कहानियों के अतिरिक्त उन्होंने साप्ताहिक पत्रों का सम्पादन आरंभ कर दिया।

मण्टो ने अपना कलम विभिन्न साहित्यांगों पर आज़माया था किन्तु वह मुख्यतया कथाकार थे और उनकी कहानियों ने ही उन्हें बहुत शीघ्र उच्च कोटि के कहानीकारों में स्थान दिलवा दिया। समालोचकों के विषैले प्रहार उन्हें अपने पथ से न डिगा सके और उन्होंने अपने मनोनीत विषय 'सेक्स' पर कहानियां लिखीं और अन्तिम समय तक (१८ जनवरी, १९५५) वह ये कहानियां लिखते रहे।

मण्टो ने अपना साहित्यिक जीवन अनुवादों से आरम्भ किया था। उन्होंने चेखोव, गोर्की और मोपासां की कतिपय कृतियों का उर्दू में बड़ा सुन्दर अनुवाद

किया था। विक्टर ह्यूगो, टाल्सटाय और गोर्की से वह प्रारम्भ में इतने प्रभावित हुए थे कि अपने को क्रांतिकारी कहा करते थे। मुस्लिम यूनिवर्सिटी से अपनी शिक्षा अपूर्ण छोड़ कर ही उन्होंने कहानियां लिखना शुरू कर दिया था और बहुत कम समय में ही बड़ी प्रसिद्धि पा चुके थे। आल इण्डिया रेडियो पर काफी दिन बड़े सफल एवं दिलचस्प नाटक लिखने के पश्चात् वह बम्बई चले गये थे जहां उन्होंने कुछ पत्रों का सम्पादन किया था तथा कई फिल्मी कहानियाँ लिखी थीं जिनमें 'आठ दिन', 'पुजारी', 'मिर्जा ग़ालिब' और 'घमंड' उल्लेखनीय हैं। इनमें से पहली फिल्म में उन्होंने अभिनय भी किया था।

मण्टो ने अपने बयालीस वर्षीय जीवन में लगभग २०० कहानियां, १०० नाटक, २० संस्मरण तथा स्केच एवं अनेक लेख लिखे थे। 'चाचा साम के नाम पत्र' शीर्षक से उन्होंने ९ पत्र भी लिखे थे जिनमें अमरीका के साम्राज्यवाद की एशिया पर बढ़ती हुई अशुभ छाया पर एक जबरदस्त व्यंग्य किया था।

मण्टो की कहानियों के विषयवस्तु पर उर्दू साहित्य में घोर मतभेद है किंतु उनकी कला अद्वितीय तथा निस्सन्देह है और उर्दू के चोटी के समालोचकों ने उनकी उस कला की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उर्दू के प्रगतिशील लेखक आंदोलन के संस्थापक श्री सज्जाद जहीर ने लिखा है :

'''सआदत हसन मण्टो उर्दू के एक बहुत अच्छे अफ़साना निगार हैं और मैं कहूंगा कि उनके कुछ अफ़सानों का शुमार हमारे अदब के बेहतरीन अफ़सानों में किया जा सकता है।.....'

उर्दू के प्रख्यात कवि सरदार जाफ़री ने जिन्होंने अपनी पुस्तक 'तरक्की पसन्द अदब' में मण्टो को 'फ़ोशनिगार' (अश्लील लेखक) के नाम से याद किया है और मण्टो की लेखनी का लोहा माना है। उन्होंने मण्टो को लिखे अपने एक पत्र में कहा था :

'तु[illegible]नते हो मेरे और तुम्हारे अदबी नुक्तए नज़र (साहित्यिक दृष्टिकोण [illegible] [illegible]लाफ़ (अन्तर) है। लेकिन इसके बावजूद मैं तुम्हारी क़द्र [illegible] बहुत सी उम्मीदें वाबस्ता किये हुए हूं।'

मण्टो के कहानी संग्रह 'चुगद' पर भूमिका लिखते हुए जाफ़री ने लिखा था :

'मण्टो उर्दू का सबसे ज्यादा बदनाम अफ़साना निगार है और वह बदनामी जो मण्टो को नसीब हुई है मक़बूलियत और शोहरत की तरह सहज कोशिश से हासिल नहीं की जा सकती उसके लिए फ़नकार में असली जौहर होना चाहिए और मण्टो का जौहर उसके कलम की नोक पर नगीने की तरह चमकता है।

'मण्टो के अफ़साने उन किरदारों की अक्क़ासी हैं जिनसे सरमायादाराना निज़ाम ने उनकी इन्सानियत छीन ली है। उनमें एक तांगे वाला है जो किसी टॉमी से बदला लेने की फ़िक्र में हैं। एक मूंगफली वाला है जो अपने मालिक-मकान सेठ की गाली सुनकर उसका खून पी जाना चाहता है लेकिन मजबूरी में खुद सिर्फ़ गाली दे सकता है। एक दलाल है जिसकी मर्दानगी की एक तवायफ़ ने तौहीन कर दी है। एक रण्डी है जिसके सीने में उसका औरतपन जाग उठा है और वह समाज से इन्तकाम लेने के लिए अपने कुत्ते के साथ सो जाती है। एक बच्चा है जो अपने बाप की हिमाक़त पर बिसूर रहा है और बाप उसके भोलेपन के सामने और भी अहमक़ मालूम होता है। एक अल्हड़ लड़की है जो जिन्दगी के तौर-तरीके सीख रही है और अपनी जिन्दगी के अधूरे जज़्बात को पूरा करने के लिए बेचैन है। एक चलती-फिरती औरत है जो औरतों के पेट पर तेल डालकर पैदा होने वाले बच्चों के बारे में पेशीनगोई करती रहती है। एक थका-मांदा नौजवान है जो अपनी तन्हा जिन्दगी की कोफ़्त को दूर करने के लिए एक तख़ीली महबूबा बनाकर उसकी मुहब्बत में मह्व (संलग्न) रहता है। यह एक अच्छी-ख़ासी पिक्चर गैलरी है जिसमें हमारे मुतवस्सित तब्के के समाज की बिगड़ी हुई तस्वीरें लगी हुई हैं।'

ये हैं मण्टो के पात्र। वे अच्छे हैं या बुरे इससे मण्टो को कोई सरोकार नहीं। इनमें सुधार हो सकता है या सर्वदा ऐसे ही रहेंगे यह बताना भी मण्टो का विषय नहीं। मण्टो को तो केवल यह दर्शाना अभीष्ट है कि ये सब इन्सान थे, इनमें इन्सान बनने की योग्यता थी लेकिन इस समाज ने जिसकी नींव लूट-

खसूट पर है उन सबको जानवर बना दिया है। मण्टो को इनमें से किससे प्रेम है और किससे घृणा यह पाठक स्वयं अनुमान लगा सकते हैं। मण्टो ने तो अपनी कलम को मात्र कैमरा बनाकर उनके चित्र खींच दिये हैं पाठक स्वयं उन चित्रों में अच्छे-बुरे पहचान लें।

शायद मण्टो और उर्दू के प्रतिगामियों के नेता हसन अस्करी इस बात में एकमत थे कि साहित्य को इस बात से कोई दिलचस्पी नहीं कि कौन जुल्म कर रहा है, कौन नहीं कर रहा; जुल्म हो रहा है या नहीं हो रहा। साहित्य तो देखता है कि जुल्म करते हुए और जुल्म सहते हुए इन्सानों का बाह्य तथा आंतरिक दृष्टिकोण क्या है। जहां तक साहित्य का सम्बन्ध है जुल्म की बाह्य क्रिया और उसके बाह्य पूरक निरर्थक हैं।' ('स्याह हाशिये' की भूमिका)

यही कारण है मण्टो ने अन्य लेखकों के प्रतिकूल अपनी कहानियों में सुधार की प्रवृत्ति को नहीं फटकने दिया। वह अपने पात्रों से प्रेम करते हैं तो पाठकों से भी यही आशा करते हैं; यदि घृणा करते हैं तो भी उन्हें यही आशा रहती है। वह अपने घृणित पात्रों में घृणा का संचार क्यों हुआ, कैसे हुआ या किस प्रकार वह दूर हो सकता है इस रोग को नहीं पालते। वह तो स्थिति जैसी है उसे कलात्मक ढंग से पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करने में विश्वास करते हैं। उनका मत है कि यदि वेश्याओं के जीवन पर कहानियाँ लिखना वर्जित है तो पहले वेश्यालय बन्द करने होंगे और तब इस विषय पर कोई कहानी नहीं लिखी जायगी। एक स्थल पर लिखते हैं :

'तवाइफ का मकान खुद एक जनाजा है जो समाज खुद अपने कन्धों पर उठाए हुए है। वह उसे जब तक दफन नहीं करेगा उसके बारे में बातें होती रहेंगी।

'यह लाश गली-सड़ी सही, बदबूदार सही, काबिले-नफरत सही, भयानक सही, लेकिन इसका मुंह देखने में क्या हर्ज है? क्या यह हमारी कुछ नहीं लगती? क्या हम इसके अजीज नहीं? हम कभी-कभी कफन हटाकर इसका मुँह देखते रहेंगे और दूसरों को दिखाते रहेंगे।'

[illegible] अपनी लेखनी और अपनी कला के बारे में अनेक स्थलों पर स्वयं

बहुत कुछ लिखा है। उनका कहना था कि मैं जो कुछ लिखता हूं यदि वह अश्लील है; नग्नता है तो इसमें मेरा कोई दोष नहीं, दोष उस घृणित समाज, उन दोषपूर्ण व्यवस्था का है जहाँ मुझ जैसे लेखक को अश्लीलता और नग्नता बिखरी हुई दृष्टिगोचर होती है।

अपनी कहानियों पर लगे आरोपों के उत्तर में मण्टो ने लिखा था

'आज जिस दौर से हम गुजर रहे हैं अगर आप उससे नावाकिफ हैं तो मेरे अफसाने पढ़िये। अगर आप उन अफसानों को बर्दाश्त नहीं कर सकते तो इसका मतलब है कि यह जमाना नाकाबिले-बर्दाश्त है। मुझमें जो बुराइयाँ हैं वो इस दौर की बुराइयाँ है। मेरी तहरीर (लेखनी) में कोई नुक्स (त्रुटि) नहीं है। जिस नुक्स को मेरे नाम से मसूब किया जाता है दरअसल वह मौजूदा निजाम का नुक्स है। मैं हंगामा पसन्द (उपद्रववादी) नहीं, मैं लोगों के ख्यालात व जज्बात में हैजान (उत्तेजना) पैदा करना नहीं चाहता। मैं तहज़ीब-तमद्दुन (संस्कृति) व समाज की चोली क्या उतारूँगा जो है ही नंगी। मैं उसे कपड़े पहनाने की कोशिश भी नहीं करता इसलिए कि यह काम दर्जियों का है। लोग मुझे सियाह कलम कहते हैं लेकिन मैं स्याह तख्ते पर काली चाक से नहीं लिखता, सफेद चाक इस्तेमाल करता हूं ताकि स्याह तख्ते की स्याही और भी ज्यादा नुमायाँ हो जाय। यह मेरा खास अन्दाज, खास तर्ज है जिसे फोहशनिगारी, (अश्लीलता) तरक्की पसन्दी और खुदा मालूम क्या कुछ कहा जाता है—लानत हो सआदत हसन मण्टो पर कमबख्त को गाली भी सलीके से नहीं दी जाती। ......'

मण्टो ने उर्दू कथा-साहित्य में जिस 'नग्नता', 'अश्लीलता' और उच्छृंखलता' का बीजारोपण किया था उसका परिणाम उनकी वे चार कहानियाँ हैं जिन पर ब्रिटिश सरकार तथा पाकिस्तानी सरकार ने अभियोग चलाये थे—'ठण्डा गोश्त', 'बू', 'काली शलवार' और 'धुआँ'।

उन्होंने अपनी इन कहानियों के बचाव के लिए खुद पैरवी की थी और फलस्वरूप वह बरी हो गये थे।

मण्टो का नंगे समाज को कपड़े न पहनाने बल्कि उसे और नंगा कर देने

का दृष्टिकोण ही आलोचकों के उन पर गिरे प्रकोप का कारण था। घृणित समाज का चित्रण, वेश्याओं का चित्रण अश्लील नहीं, न ही उसमें लाग लपेट अपेक्षित है बल्कि इस सिलसिले में मण्टो का साहस और निर्भीकता वस्तुतः सराहनीय है। परन्तु प्रश्न यह है कि हमारे इस विशाल समाज में जहाँ प्रत्येक वस्तु का बाहुल्य है, जहाँ सद्गुण-दुर्गुण, सकार-नकार, भले-बुरे, शोषक-शोषित अत्याचारी-अत्याचारित, शासक-शासित सभी मौजूद हैं तब क्या वेश्यावृत्ति या भ्रष्टाचार की ओर प्रवृत्त मानव का चित्रण ही सर्वथा आवश्यक और अनिवार्य है? क्या इसी का चित्रण लेखक का परम कर्तव्य है? क्या वेश्या का कोठा चित्रित करने व उसकी गंदगी दिखा देने मात्र से वेश्याओं का तथा उन्हें जन्म देने वाली इस व्यवस्था अथवा समाज का अन्त हो जायगा? मण्टो ने दरअसल अपनी कहानियों के पात्रों के शत्रु को पहचाना तो सही पर उससे किसी को कुछ हासिल न हुआ।

उर्दू के लब्ध-प्रतिष्ठ आलोचक श्री आले एहमद 'सुरूर' ने उनके सम्बन्ध में लिखा है।

'........मण्टो मोपासाँ और माँम दोनों से बहुत ज्यादा मुतास्सिर हुआ है।......वह बड़ा अच्छा फनकार है। उसने अफसाने लिखना सीखा नहीं वह अफसाना-निगार पैदा हुआ था।...मगर उसका जहन मरीज है उसे जिन्स और उसकी बदउनवानी से बहुत दिलचस्पी है। उसके अफसानों में जिन्दगी जरूर है लेकिन एक महदूद व मखसूस किस्म की जिन्दगी...वह माँम की तरह किसी चीज पर ईमान नहीं रखता। सिर्फ इस बात का वह कायल है कि इन्सानी फितरत बड़ी अजीब है और उसमें कमी ज्यादा है।

'इस बात की अहमियत से इन्कार नहीं किया जा सकता लेकिन इसकी बड़ाई मश्कूक है।'

इसी प्रकार सज्जाद जहीर ने भी उन्हीं से उनकी कहानियों पर चर्चा करते हुए कहा था :

'......आपका यह अफसाना 'बू' एक बहुत ही दर्दनाक लेकिन फिजूल इसलिए कि दरम्यानी तब्के के हर आसूदाहाल फर्द (संतुष्ट

व्यक्ति) की जिन्सी बदउन्वानियों (विषयी विच्छृंखलताएँ) का तजकरा चाहे कितना ही हकीकत पर मब्नी (आधारित) क्यों न हो लिखने और पढने वाले दोनो के लिए तजीए-औकात (समय-नाश) है और दरअसल वह जिन्दगी के अहमतरीन (अत्यंत महत्वपूर्ण) तकाजों से इसी कद्र फरार (पलायन) का इजहार है जितना कि कदीम किस्म की रजतपसंदी (प्रतिक्रियावाद)···।'

इस समाज मे कुछ और भी वर्ग है, कुछ और पात्र भी है जो अपनी खोई हुई मानवता को पुनंप्राप्त करने के लिए सघर्षशील हैं। जो जुल्म-अत्याचार, शोषण व कुरीतियो के विरुद्ध लड़ रहे हैं और एक नये ससार का निर्माण कर रहे है। लेकिन मण्टो की नजर उन तक न गई—या यों कहे कि उनकी ओर देखना मण्टो ने इतना आवश्यक न समझा।

जीवन के प्रति मण्टो का कुछ विचित्र-सा दृष्टिकोण था। वह इस समाज मे रह कर इसकी गंदगी को देखते थे। उसका विरोध करते थे पर साथ ही इस समाज की जड —जनता—मे भी अलगाव ही पसन्द था। कृष्णचन्द्र से शराबनोशी के समय उन्होंने कहा था :

'··· जिन्दगी नही देखोगे, गुनाह नही करोगे, मौत के करीब नहीं जाओगे, गम का मजा नही चखोगे तो क्या तुम खाक लिखोगे ?···'

मण्टो ने वास्तव में यह सब किया था, मौत को उन्होंने करीब बुलाया था और स्वय उसके नजदीक चले गये। मण्टो के जीवन की निराशा ने मण्टो को सब तरफ से काट कर केवल शराब मे गर्क कर दिया और कभी वह पागलखाने गये तो कभी अत्यधिक मदिरा-पान के कारण उन्हें अस्पताल मे रहना पड़ा और एक दिन वह आया जब वह इस ससार से ही चले गये।

कृष्णचन्द्र ने मण्टो की मृत्यु पर लिखे अपने सुन्दर लेख मे उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए एक जगह लिखा था :

'मण्टो एक बहुत बड़ी गाली थी। कोई व्यक्ति ऐसा न था जिससे उसका झगड़ा न हुआ हो!'''बजाहिर तरक्कीपसन्दों से खुश नही था, न ही गैर तरक्कीपसन्दो से, न पाकिस्तान से, न हिन्दुस्तान से। न अन्कल साम से न रूस से। न जाने उसकी प्यासी, बेचैन व बेकरार रूह क्या चाहती थी ? उसकी

जबान बेहद कड़वी थी। लिखने की तर्ज थी जो कसीली और कँटीली, नश्तर की तरह तेज और बेरहम, लेकिन आप उस गाली को, उसकी तल्ख जुबानी को, उसके नुकीले, काँटेदार लफ्जों को जरा-सा खुरचकर तो देखिये अन्दर से जिन्दगी का मीठा-मीठा रस टपकने लगेगा। उनकी नफरत में मुहब्बत थी, उरियानी में सत्रपोशी, लुटी हुई अस्मत वाली औरतों की दास्तानों में उसके अदब की पाकीजगी छिपी हुई थी। जिन्दगी ने मण्टो से इन्साफ नहीं किया लेकिन तारीख जरूर उससे इन्साफ करेगी।'

मण्टो की महानता इस बात में भी है कि उन्होंने अपने पात्रों का चयन हमारे जीवन में से किया। उनके पात्र हमें रोजमर्रा दिखाई देने वाले चलते-फिरते, गोश्त-पोस्त वाले पात्र हैं, जो सच्चे पात्र हैं। मण्टो की कहानियाँ कुछ आत्मचरित का-सा झुकाव लिए हैं जो उनकी सुन्दरता को द्विगुणित कर देता है। माण्टो की शैली उनकी अपनी अछूती व अद्वितीय शैली थी जिसने उन्हें आधुनिक युग का महान् कलाकार बनाया। मण्टो की भाषा सरल, सुबोध तथा पैनी व प्रभावशाली थी। शब्दों में मितव्ययिता के वह कायल थे।

स्वभावतया ही स्वातंत्र्य-प्रेमी होने के कारण मण्टो ने कभी किसी संस्था-विशेष से अपने को सम्बद्ध न किया था। भारतीय वातावरण, सांप्रदायिक दंगों के कारण जब अत्यधिक दूषित हो गया तो वह बम्बई से लाहौर चले गये और वहाँ रहकर भी वह कभी सन्तुष्ट न रहे। उन्हें अपनी जन्मभूमि भारत की याद बहुत आती रही। मण्टो भारत से पाकिस्तान किसी साम्प्रदायिक कारण से नहीं गये थे बल्कि कहना चाहिए साम्प्रदायिकता के विरुद्ध मण्टो ने जिस निर्ममता से प्रहार किया वह उन्हीं का साहस था।

पाकिस्तान में मण्टो ने बहुत सी कहानियाँ लिखीं और उनके अनेक संग्रह प्रकाशित हुए किन्तु इन सबके बावजूद वह आर्थिक दृष्टि से हमेशा परेशान रहे और 'जेबेकफन' नामक अपने लेख में इसी संकट का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है :

'मेरी मौजूदा जिन्दगी मसायब से पुर है। दिन-रात मशक्कत करने के बाद बमुश्किल इतना कमाता हूं जो मेरी रोजमर्रा की जरूरियात के लिए पूरा

हो सके। यह तकलीफदेह एहसास मुझे हर वक्त दीमक की तरह चाटता रहता है कि अगर मैंने आँखें मीच लीं तो मेरी बीवी और तीन कमसिन बच्चों की देखभाल कौन करेगा ? मैं फोरानवीस, दहशत पसन्द, सनकी, लतीफाबाज, और रजनपसन्द सही लेकिन एक बीवी का खाविन्द और तीन लड़कियों का बाप हूं, इनमें से अगर कोई बीमार हो जाय और मौज़ूं व मुनासिब इलाज के लिए मुझे दर-दर की भीख माँगनी पड़े तो मुझे बहुत कोफ्त होती है।'

मण्टो बहुत पवित्र हृदयी थे, गन्दे-से-गन्दे विषय पर कहानी लिखकर भी वह अत्यन्त साफ सुथरे तथा पवित्र रहे थे। किन्तु मदिरा ने उन्हें खोखला कर दिया और परिणामस्वरूप १८ जनवरी १९५५ को भारत एवं पाकिस्तान के इस महान् चिन्तक का हृदय-गति बंद हो जाने से देहान्त हो गया। उर्दू कथा साहित्य में मण्टो की मृत्यु से जो रिक्ति हुई है उसे पूरा करना सहज नहीं है।

२३३४, छत्ता मोमगराँ,
तुर्कमान गेट,
दिल्ली।

—नूरनबी अब्बासी

सौ कैण्डल पॉवर का बल्ब

वह चौक में कैंसर पार्क के बाहर जहाँ बन्द ताँगे खड़े रहते हैं, बिजली के एक खम्भे के साथ खामोश खड़ा था और दिल-ही-दिल में सोच रहा था 'कोई वीरानी सी वीरानी है।'

यही पार्क जो सिर्फ़ दो वर्ष पहले इतनी पुर-रौनक जगह थी अब उजड़ी हुई दिखाई देती थी। जहाँ पहले स्त्री पुरुष तड़क भड़क वाले वस्त्रों में चलते-फिरते थे वहाँ अब बेहद मैले-कुचैले कपड़ों में लोग इधर-उधर निरुद्देश्य फिर रहे थे। बाजार में काफ़ी भीड़ थी परन्तु उसमें वह रंग नहीं था, जो एक मेले-ठेले का हुआ करता था। आसपास की सीमेंट से बनी हुई इमारतें अपना रूप खो चुकी थी, सर-झाड़-मुंह-फाड़ एक दूसरे की ओर फटी-फटी आँखों से देख रही थी, जैसे विधवा स्त्रियाँ।

वह आश्चर्य-चकित था कि वह क्रीम-पाउडर कहाँ गया? वह सिन्दूर कहाँ उड़ गया? वे सुर कहाँ गुम हो गये जो उसने कभी यहाँ देखे तथा सुने थे? अधिक समय नहीं बीता था—अभी वह कल ही तो (दो वर्ष भी कोई समय होता है) यहाँ आया था। कलकत्ते से जब उसे यहाँ की एक फ़र्म ने अच्छे वेतन पर बुलाया था तो उसने कैंसर पार्क में कितनी कोशिश की थी कि उसे किराये पर एक कमरा ही मिल जाय, परन्तु वह असफल रहा था—हज़ार फ़र्माइशों के बावजूद।

किन्तु अब उसने देखा कि जिस कुँजड़े, जुलाहे और मोची की तबियत चाहती थी फ़्लैटों और कमरों पर अपना अधिकार जमा रहा था।

जहाँ किसी शानदार फ़िल्म कम्पनी का दफ़्तर हुआ करता, वहाँ चूल्हे सुलग

रहे हैं; जहाँ कभी शहर की बड़ी-बड़ी रंगीन हस्तियाँ एकत्र होती थीं, वहाँ धोबी मैले कपड़े धो रहे हैं।

दो वर्ष में इतनी बड़ी क्रान्ति।

वह हैरान था। लेकिन उसे इस क्रान्ति की पृष्ठभूमि का ज्ञान था। अखबारों से और उन मित्रों से जो शहर में मौजूद थे, उसे सब पता लग चुका था कि यहाँ कैसा तूफान आया था। परन्तु वह सोचता था कि यह कोई अजीब तूफान था जो इमारतों का रंग-रूप भी चुराकर ले गया। इन्सानों ने इन्सान कत्ल किये; स्त्रियों का सतीत्व लूटा; किन्तु इमारतों की सूखी लकड़ियों और उनकी ईंटों से भी यही बर्ताव किया।

उसने सुना था कि कि इस तूफान में स्त्रियों को नग्न किया गया था, उनके स्तन काटे गये थे। यहाँ उसके आसपास जो कुछ था सब नंगा और यौवनहीन था।

वह बिजली के खम्भे के साथ लगा अपने एक मित्र की प्रतीक्षा कर रहा था; जिसकी सहायता से वह अपने निवास का कोई प्रबन्ध करना चाहता था। इस मित्र ने उससे कहा था कि तुम कैसर पार्क के पास जहाँ ताँगे खड़े रहा करते हैं, मेरा इन्तजार करना।

दो वर्ष हुए जब वह नौकरी के सिलसिले में यहाँ आया था तो यह ताँगों का अड्डा बहुत मशहूर जगह थी—सबसे बढ़िया, सबसे बाँके ताँगे सिर्फ यहीं खड़े रहते थे, क्योंकि यहाँ से ऐय्याशी का हर सामान उपलब्ध हो जाता था। अच्छे से अच्छा रेस्तोरां और होटल समीप था। सर्वश्रेष्ठ चाय, उत्तम भोजन और अन्य आवश्यक वस्तुएँ भी।

शहर के जितने बड़े दलाल थे वे यहीं मिलते थे। इसलिए कि कैसर पार्क में बड़ी-बड़ी कंपनियों के कारण रुपया और शराब पानी की भाँति बहते थे।

उसे याद आया कि दो वर्ष पूर्व उसने अपने मित्र के साथ बड़े ऐश किये थे। अच्छी-से-अच्छी लड़की हर रात को उनकी आगोश में होती थी। युद्ध के कारण स्काच अप्राप्य थी, परन्तु एक मिनट में दर्जनों बोतलें प्राप्त हो थीं।

तांगे अब भी खड़े थे किन्तु उन पर वे तुर्रे, वे फुंदने, वे पीतल के पालिश किये हुए साज-सामान की चमक-दमक नहीं थी। वह भी शायद दूसरी चीजों के साथ उड़ गई थी।

उसने घड़ी में समय देखा, पांच बज चुके थे। फरवरी के दिन थे। शाम के साये छाने शुरू हो गये थे। उसने दिल-ही-दिल में मित्र को धिक्कारा और दाहिने हाथ के निर्जन होटल में मोरी के पानी से बनी हुई चाय पीने के लिए जाने ही वाला था, कि किसी ने उसे हौले से पुकारा। उसने सोचा शायद उसका मित्र आगया परन्तु जब उसने मुड़ कर देखा तो कोई अजनबी था—आम शक्ल सूरत का, लट्ठे की नई शलवार पहने जिसमें और अधिक सलों की गुंजाइश नहीं थी नीली पापलिन की कमीज में जो लाण्ड्री जाने के लिए व्याकुल थी।

उसने पूछा, 'क्यों भई, तुमने मुझे बुलाया?'

उसने धीरे से उत्तर दिया, 'जी हाँ।'

उसने समझा कि शरणार्थी है, भीख माँगना चाहता है। 'क्या माँगते हो?'

उसने उसी स्वर में उत्तर दिया, 'जी कुछ नहीं।' फिर निकट आकर कहा, 'कुछ चाहिए आपको?'

'क्या?'

'कोई लड़की-वड़की।' यह कहकर पीछे हट गया।

उसके सीने में एक तीर-सा लगा कि देखो इस जमाने में भी यह लोगों की वासना टटोलता फिरता है। और फिर मानवता के बारे में ऊपर-तले उसके मस्तिष्क में निरुत्साह करने वाले विचार उत्पन्न हुए। इन्हीं विचारों से अभिभूत हो उसने पूछा:

'कहाँ है?'

उसका स्वर दलाल के लिए आशाजनक नहीं था, अतः कदम उठाते हुए उसने कहा, 'जी नहीं, आपको जरूरत नहीं मालूम होती?'

उसने उसे रोका। 'यह तुमने कैसे जाना? इन्सान को हर वक्त इस चीज की जरूरत होती है जो तुम दिलवा सकते हो—सूली पर भी, जलती चिता में भी……।'

वह दार्शनिक बनने ही वाला था कि रुक गया, 'देखो, अगर यहीं पास हो तो मैं चलने के लिए तैयार हूं। मैंने यहां एक दोस्त को वक्त दे रखा है।'

दलाल फिर बोला, 'पास ही है, हुजूर पास।'

'कहां?'

'यह सामने वाली बिल्डिंग में।'

उसने सामने वाली बिल्डिंग को देखा।

'उसमें, उस बड़ी बिल्डिंग में?'

'जी हां।'

वह कांप गया, 'अच्छा, तो...'

संभलकर उसने पूछा, 'मैं भी चलूं?'

'चलिए, लेकिन मैं आगे-आगे जाता हूं।' और दलाल ने सामने वाली बिल्डिंग की ओर चलना शुरू कर दिया।

वह सैकड़ों आत्मान्वेषी बातें सोचता हुआ उसके पीछे हो लिया।

चन्द गजों का फ़ासला था, फौरन तै हो गया। दलाल और वह दोनों उस बड़ी बिल्डिंग में थे जिसके मस्तक पर एक बोर्ड लटक रहा था—उसकी हालत सबसे खराब थी, जगह-जगह उखड़ी हुई ईंटें, कटे हुए पानी के नलों और कूड़े-करकट के ढेर थे।'

अब शाम गहरी हो गई थी। ड्योढ़ी में से गुजरकर आगे बढ़े तो अंधेरा शुरू हो गया। चौड़ा-चकला आंगन तै करके वह एक तरफ मुड़ा जहां इमारत बनते-बनते रुक गई थी। नंगी ईंटें थीं, चूना और सीमेंट गिरे हुए, सख्त ढेर पड़े थे और जा-बजा बजरी बिखरी हुई थी।

दलाल अपूर्ण सीढ़ियां चढ़ने लगा कि मुड़कर उसने कहा:

'आप यहीं ठहरिए मैं अभी आया।'

वह रुक गया; दलाल गायब हो गया। उसने मुंह ऊपर करके सीढ़ियों के अन्त की ओर देखा तो उसे तेज रोशनी नजर आई।

दो मिनट गुजर गये तो दबे पांव वह भी ऊपर चढ़ने लगा। आखिरी जीने पर उसे दलाल की बहुत जोर की कड़क सुनाई दी:

'उठती है कि नहीं ?'

कोई स्त्री बोली, 'कह जो दिया मुझे सोने दो।' उसकी आवाज घुटी-घुटी-सी थी।

दलाल फिर कड़का, 'मैं कहता हूं उठ, मेरा कहा नहीं मानेगी तो याद रख...'

स्त्री की आवाज आई, 'तू मुझे मार डाल, लेकिन मैं नहीं उठूंगी। खुदा के लिए मेरे हाल पर रहम कर—'

दलाल ने पुचकारा, 'उठ मेरी जान, जिद न कर। गुजारा कैसे चलेगा ?'

स्त्री बोली, 'जाय गुजारा जहन्नुम में, मैं भूखी मर जाऊँगी। खुदा के लिए मुझे तंग न कर। मुझे नींद आ रही है।'

दलाल की आवाज कड़ी हो गई 'तू नहीं उठेगी, हरामजादी, सूअर की बच्ची ? '

स्त्री चिल्लाने लगी, 'मैं नहीं उठूंगी, नहीं उठूंगी नहीं उठूंगी।'

दलाल की आवाज भिंच गई।

'आहिस्ता बोल, कोई सुन लेगा। ले चल उठ। तीस-चालीस रुपये मिल जायेंगे।'

स्त्री की वाणी में आग्रह था, 'देख मैं हाथ जोड़ती हूं। मैं कितने दिनों से जाग रही हूं ? तरस खा। खुदा के लिए मुझ पर रहम कर...।'

'बस एक-दो घण्टे के लिए, फिर सो जाना। नहीं तो देख मुझे सख्ती करनी पड़ेगी।'

थोड़ी देर के लिए एक खामोशी छा गई। उसने दबे पांव आगे बढ़कर उस कमरे में झांका जिसमें से बड़ी तेज रोशनी आ रही थी।

उसने देखा कि एक छोटी कोठरी है जिसके फर्श पर एक स्त्री लेटी है। कमरे में दो-तीन बर्तन हैं, बस उसके सिवा और कुछ नहीं। दलाल उस स्त्री के पास बैठा उसके पाँव दाब रहा था।

थोड़ी देर बाद उसने स्त्री से कहा, ले अब उठ। कसम खुदा की एक-दो घण्टे में आ जायगी। फिर सो जाना।'

वह दार्शनिक बनने ही वाला था कि रुक गया, 'देखो, अगर यही
है तो मैं चलने के लिए तैयार हूँ। मैं यहाँ एक दोस्त को बता दूँ ...

दलाल निकट आया, 'पास ही बिल्कुल पास।'

'कहाँ?'

'यह सामने वाली बिल्डिंग में।'

उसने सामने वाली बिल्डिंग को देखा।

'उसमें, उस बड़ी बिल्डिंग में?'

'जी हाँ।'

वह काँप गया, 'अच्छा, तो…?'

संभलकर उसने पूछा, 'मैं भी चलूँ?'

'चलिए, लेकिन मैं आगे-आगे चलता हूँ।' और दलाल ने सामने
बिल्डिंग की ओर चलना शुरू कर दिया।

वह सैकड़ों आत्मा-वेधी बातें सोचता उसके पीछे हो लिया ...

चन्द गजों का फ़ासला था, फौरन तै हो गया। दलाल ... वह ...
बड़ी बिल्डिंग में थे जिसके मस्तक पर एक बोर्ड लटक ... उस ...
सबसे खराब थी, जगह-जगह उखड़ी हुई ईंटें, गन्दे ... के ...
कूड़े-करकट के ढेर थे।'

अब शाम गहरी हो गई थी। ड्योढ़ी में से ... बढ़े तो ...
हो गया। चौड़ा-चकला आंगन तै करके वह
बनते रुक गई थी। नंगी ईंटें थीं, चूना
और जा-बजा बजरी बिखरी हुई थी।

दलाल अपूर्ण सीढ़ियाँ चढ़ने ...

'आप यहीं ठहरिए मैं अभी

वह रुक गया; दलाल
के अन्त की ओर देखा तो ...

दो मिनट गुजर गये
पर उसे दलाल की

62892

उसने कहा, 'पचास ही रखो।'

'साहब सलाम !'

उसके जी में आई कि एक बहुत बड़ा पत्थर उठा कर उसको दे मारे।

दलाल बोला, 'तो ले जाइए इसे। लेकिन देखिए तंग न कीजिएगा। और फिर एक-दो घण्टे के बाद छोड़ जाइएगा।'

'बेहतर।'

उसने बड़ी बिल्डिंग से बाहर निकलना शुरू किया जिसकी रोशनी पर वह कई बार बहुत बड़ा बोर्ड पढ़ चुका था।

बाहर तांगा खड़ा था वह आगे बैठ गया और स्त्री पीछे।

दलाल ने एक बार फिर सलाम किया और एक बार फिर उसके दिल में यह इच्छा हुई कि वह एक बहुत बड़ा पत्थर उठा कर, उसके सर पर दे मारे।

तांगा चल पड़ा। वह उसे पास ही एक वीरान-से होटल में ले गया। मस्तिष्क में जो विकार उत्पन्न हो गया था उससे अपने को निकाल कर उसने उस स्त्री की ओर देखा जो सिर से पैर तक उजाड़ थी। उसके पपोटे सूजे हुए थे, आँखें झुकी हुई थीं। उसका ऊपर का धड़ भी सारे-का-सारा झुका हुआ था, जैसे वह एक ऐसी इमारत है जो पल भर में गिर जायगी। वह उससे सम्बोधित हुआ :

'जरा गर्दन तो ऊँची कीजिए।'

वह ज़ोर से चौंकी, 'क्या ?'

'कुछ नहीं।' मैंने सिर्फ इतना कहा था कि कोई बात तो कीजिए।'

उसकी आँखें लाल बोटी हो रही थीं जैसे उनमें मिर्चें डाली गई हों, वह खामोश रही।

'आपका नाम ?'

'कुछ भी नहीं।' उसके स्वर में तेजाब की तेजी थी।

'आप कहाँ की रहने वाली हैं ?'

'जहाँ की भी तुम समझ लो।'

वह स्त्री एकदम यों उठी जैसे आग दिखाई हुई छछूंदर उठती है और चिल्लाई, 'अच्छा उठती हूं।'

वह एक तरफ हट गया। असल में वह डर गया था। दबे पांव वह तेजी से नीचे उतर गया। उसने सोचा कि भाग जाये। इस शहर ही से भाग जाय। इस दुनिया से ही भाग जाय। मगर कहां?

फिर उसने सोचा कि यह स्त्री कौन है? क्यों उस पर इतना जुल्म हो रहा है? और यह दल्लाल कौन है, उसका क्या लगता है और यह इस कमरे में इतना बड़ा बल्ब जलाकर जो सौ कैंडल पावर से किसी तरह भी कम नहीं था क्यों रहते हैं? कब से रहते हैं?

उसकी आंखों में उस तेज बल्ब का प्रकाश अभी तक घुसा हुआ था। उसे कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। परन्तु वह सोच रहा था कि इतनी तेज रोशनी में कौन सो सकता है? इतना बड़ा बल्ब, क्या ये छोटा नहीं लगा सकते? यही पन्द्रह-पच्चीस कैण्डल पावर का?

वह यह सोच रहा था कि आहट हुई। उसने देखा कि दो साये उसके पास खड़े हैं। एक ने जो दल्लाल था, उससे कहा:

'देख लीजिए।'

उसने कहा, 'देख लिया है।'

'ठीक है ना?'

'ठीक है।'

'चालीस रुपये होंगे।'

'ठीक है।'

'दे दीजिए।'

वह अब सोचने-समझने के योग्य नहीं रहा था। जेब में उसने हाथ डाला, निकाल कर दलाल के हवाले कर दिये।

लो कितने हैं।'

ो खड़खड़ाहट सुनाई दी।

कहा, 'पचास हैं।'

6282

उसने कहा, 'पचास हो रहो।'

'साहब सलाम!'

उसके जी में आई कि एक बहुत बड़ा पत्थर उठा कर उसको दे मारे।

दलाल बोला, 'तो ले जाइए इसे। लेकिन देखिए तंग न कीजिएगा। और फिर एक-दो घण्टे के बाद छोड़ जाइएगा।'

'बेहतर।'

उसने बड़ी बिल्डिंग से बाहर निकलना शुरू किया जिसकी रोशनी पर वह कई बार बहुत बड़ा बोर्ड पढ़ चुका था।

बाहर तांगा खड़ा था वह आगे बैठ गया और स्त्री पीछे।

दलाल ने एक बार फिर सलाम किया और एक बार फिर उसके दिल में यह इच्छा हुई कि वह एक बहुत बड़ा पत्थर उठा कर, उसके सर पर दे मारे।

तांगा चल पड़ा। वह उसे पास ही एक वीरान-से होटल में ले गया। मस्तिष्क में जो विकार उत्पन्न हो गया था उससे अपने को निकाल कर उसने उस स्त्री की ओर देखा जो सिर से पैर तक उजाड़ थी। उसके पपोटे सूजे हुए थे, आँखें झुकी हुई थीं। उसका ऊपर का धड़ भी सारे-का-सारा झुका हुआ था, जैसे वह एक ऐसी इमारत है जो पल भर में गिर जायगी। वह उससे सम्बोधित हुआ :

'जरा गर्दन तो ऊँची कीजिए।'

वह जोर से चौंकी, 'क्या?'

'कुछ नहीं।' मैंने सिर्फ इतना कहा था कि कोई बात तो कीजिए।'

उसकी आँखें लाल बोटी हो रही थीं जैसे उनमें मिर्चें डाली गई हों; वह खामोश रही।

'आपका नाम?'

'कुछ भी नहीं।' उसके स्वर में तेजाब की ...

'आप कहाँ की रहने वाली हैं?'

'जहाँ की

फर्श का जो हिस्सा उसे नजर आया, उस पर एक स्त्री चटाई पर लेटी थी। उसने उसे गौर से देखा—जो स्त्री थी; मुँह पर दुपट्टा था। उसका सीना सांस के उतार-चढ़ाव से हिल रहा था। वह जरा और आगे बढ़ा। उसकी चीख निकल गई, मगर उसने फौरन ही दबा ली—उस स्त्री से कुछ दूर नंगे फर्श पर एक आदमी पड़ा था जिसका सिर टूक-टूक था। पास ही खून में लथपथ ईंट पड़ी थी। यह सब उसने एकदम देखा और सीढ़ियों की तरफ लपका, पांव फिसला और गिरे। परन्तु उसने चोटों की कोई परवाह नहीं की और होश व हवास कायम रखने की कोशिश करते हुए बड़ी कठिनाई से अपने घर पहुंचा और सारी रात डरावने ख्वाब देखता रहा।

खुदफ़रेब

हम न्यू पेरिस स्टोर के प्रायवेट कमरे में बैठे थे। बाहर टेलीफोन की घण्टी बजी तो उसका मालिक श्याम उठकर दौड़ा। मेरे साथ मसूद बैठा था; उससे कुछ दूर हटकर जलील दाँतों से अपनी छोटी-छोटी उँगलियों के नाखून काट रहा था। उसके कान बड़े गौर से श्याम की बातें सुन रहे थे। वह टेलीफोन पर किसी से कह रहा था :

'तुम झूठ बोलती हो; अच्छा खैर देख लेंगे। लो, यह क्या कहा? तुम्हारे लिए तो हमारी जान हाज़िर है। अच्छा तो ठीक है पाँच बजे। खुदा हाफ़िज़! क्या कहा? अरे भई कह तो दिया कि तुम्हें मिल जाऊँगा।'

जलील ने मेरी ओर देखा, 'मण्टो साहब, ऐश करता है श्याम।'

मैं जवाब में मुस्करा दिया।

जलील उँगलियों के नाखून अब तेज़ी से काटने लगा।

'कई लड़कियों के साथ इसका टाँका मिला हुआ है। मैं तो सोचता हूँ एक स्टोर खोल लूँ—नेडीज़ स्टोर। ख़्वामख़्वाह प्रेम के चक्कर में पड़ा हुआ हूँ; औरत का साया तक भी वहाँ नहीं आता। सारा दिन गड़गड़ाहटें सुनो; उल्लू के पट्ठे किस्म के ग्राहकों से मगज़मारी करो। यह ज़िन्दगी है!'

मैं फिर मुस्करा दिया। इतने में श्याम आ गया। जलील ने ज़ोर से चूतड़ों पर धप्पा मारा और कहा, 'सुनाइये कौन थी यह जिसके लिए तू अपनी जान हाज़िर कर रहा था।'

श्याम बैठ गया और कहने लगा, 'मण्टो साहब के सामने ऐसी बातें न किया करो।

जलील ने अपनी ऐनक के मोटे शीशों में घूरकर ग़यास की ओर देखा और कहा, 'मण्टो साहब को सब मालूम है, तुम बताओ कौन थी ?'

ग़यास ने अपने नीले शीशे वाली ऐनक उतार कर उसकी कमानी ठीक करनी शुरू की। 'एक नई है, परसों आई थी टेलीफ़ोन करने। किसी से हँस-हँसकर बातें कर रही थी। फ़ोन कर चुकी तो मैंने उससे कहा, 'जनाब फ़ीस अदा कीजिए।' यह सुनकर मुस्कराने लगी। पर्स में हाथ डालकर उसने दस रुपये का नोट निकाला और कहा, 'हाज़िर है।' मैंने कहा, 'शुक्रिया! आपका मुस्करा देना ही काफ़ी है।' बस दोस्ती हो गई। एक घण्टे तक यहाँ बैठी रही, जाते हुए दस रूमाल ले गई।' मसूद ख़ामोश बैठा अपनी बेकारी के बारे में सोच रहा था, उठा, 'बकवास है, महज़ खुदफ़रेबी है।' यह कहकर उसने मुझे सलाम किया और चला गया।'

ग़यास अपनी बातों से बहुत ख़ुश था। मसूद जब अकस्मात् बोला तो उसका चेहरा किंचित मुर्झा गया। जलील थोड़ी के देर बाद ग़यास से सम्बोधित हो गया, 'क्या कहा ?'

ग़यास चौंका, 'क्या कहा ?'

जलील ने फिर पूछा, 'क्या मांग रही थी ?'

ग़यास ने कुछ संकोच के पश्चात् कहा, 'मेडन फ़ार्म ब्रेज़ियर' जलील की आँखें ऐनक के मोटे शीशों के पीछे से चमकीं, 'साइज़ क्या है ?'

ग़यास ने जवाब दिया, 'थर्टी फ़ोर।'

जलील ने मुझसे सम्बोधन किया 'मण्टो साहब, यह क्या बात है अँगिया देखते ही मेरे अन्दर गड़बड़-सी होने लगती है।'

मैंने मुस्कराकर उससे कहा, 'आपकी कल्पना-शक्ति बहुत तेज है।'

ज ...छ न समझा और न वह समझना चाहता था। उसके मस्तिष्क ...ी थीं, वह उस लड़की के बारे में बातें करना चाहता था ...स ने टेलीफोन पर बातें की थीं। अतः मेरा उत्तर सुनकर ...हा, 'यार हमसे भी मिलाओ उसे।'

...नी ठीक करके ऐनक लगा ली, '...भी यहाँ आयेगी तो

'कुछ नहीं यार तुम हमेशा यही गच्चा देते रहते हो। पिछले दिनों जब वह यहाँ आई थी क्या नाम था उसका?—जमीला। मैंने आगे बढ़कर उससे बात करनी चाही तो तुमने हाथ जोड़कर मुझसे मना कर दिया। मैं उसे खा तो न जाता।' यह कहकर जलील ने ऐनक के मोटे शीशों के पीछे अपनी आँखें सिकोड़ लीं।

जलील और गयास दोनों में बचपना था। दोनों हर समय लड़कियों के बारे में सोचते रहते थे: खूबसूरत, मोटी, दुबली, भद्दी लड़कियों के बारे में, ताँगे में बैठी हुई लड़कियों के बारे में; पैदल चलती और साइकिल सवार लड़कियों के बारे में। जलील इस मामले में गयास से बाजी ले गया था। दफ्तर से किसी आवश्यक कार्यवश मोटर में निकलता; रास्ते में कोई ताँगे में बैठी या मोटर में सवार लड़की नजर आ जाती तो उसके पीछे अपनी मोटर लगा देता। यह उसका अत्यन्त प्रिय मनोरंजन था, परन्तु उसने कभी बदतमीज़ी न की थी। छेड़छाड़ से उसे डर लगता था। जहाँ तक वार्तालाप का सम्बन्ध था उसे उसका विजेता कहना चाहिए, वह बड़े-बड़े मजबूत क़िले जीत चुका था।

प्राईवेट कमरे में जब बाहर स्टोर से कोई स्त्री की आवाज आती तो गयास उछल पड़ता और पर्दा हटाकर एकदम बाहर निकल जाता। मर्द ग्राहकों से उसे कोई दिलचस्पी नहीं थी; उनसे उसका नौकर निपटता था।

दोनों अपने काम में होशियार थे। स्टोर किस प्रकार चलाया जाता है, उसे किस प्रकार लोकप्रिय बनाया जाता है इसमें गयास को बड़ी दक्षता प्राप्त थी। इसी तरह जलील को प्रेस के सभी अंगों का परिपूर्ण ज्ञान था। किन्तु फुर्सत के समय वे केवल लड़कियों के सम्बन्ध में सोचते थे—काल्पनिक तथा वास्तविक लड़कियों के सम्बन्ध में।

स्टोर में किसी दिन जब कोई लड़की न आती तो गयास उदास हो जाता। यह उदासी वह जलील से टेलिफ़ोन पर उन लड़कियों के बारे में बातें करके दूर करता जो बकौल उसके जाल में फँसी हुई थीं। जलील उन अपनी विजयों का हाल बताता और दोनों कुछ देर बातें करते। स्टोर में कोई ग्राहक आता

या उधर प्रेस में किसी को जलील की ज़रूरत होती तो दिलचस्प बातों का यह क्रम टूट जाता।

इस दृष्टि से न्यू पेरिस स्टोर बड़ी दिलचस्प जगह थी। जलील दिन में दो-तीन बार ज़रूर आता। प्रेस से किसी काम के लिए निकलता तो चन्द मिनटों के ही लिए स्टोर में दाख़िल हो जाता। ग़यास से किसी लड़की के बारे में छेड़-छाड़ करता और उँगली में मोटर की चाबी घुमाता चला जाता।

जलील को ग़यास से यह शिकायत थी कि वह अपनी लड़कियों के बारे में बड़ी राज़दारी से काम लेता है, उनका नाम तक नहीं बताता। छिप-छिप कर उनसे मिलता है, उनको उपहारादि देता है और अकेले-अकेले ऐश करता है। और यही शिकायत ग़यास को जलील से थी किन्तु दोनों के मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध जैसे-के-तैसे ही थे।

एक दिन स्टोर में एक काले बुर्क़े वाली लड़की आई, नक़ाब उल्टा हुआ था, चेहरा पसीने से शराबोर था, आते ही स्टूल पर बैठ गई। ग़यास जब उसकी ओर बढ़ा तो उसने बुर्क़े से पसीना पोंछ कर उससे कहा' 'पानी पिलाइये एक गिलास।'

ग़यास ने फ़ौरन नौकर को भेजा कि एक ठण्डा लेमन ले आये। स्त्री ने छत के निश्चल पंखों को देखा और ग़यास से पूछा, 'पंखा क्यों नहीं चलाते आप ?'

ग़यास ने सिर-से-पैर तक क्षमा की मूर्ति बन कर कहा, 'दोनों ख़राब हो गये हैं; मालूम नहीं क्या हुआ ? मैंने आदमी भेजा है।'

स्त्री स्टूल पर से उठी, 'मैं तो यहाँ एक मिनट नहीं बैठ सकती।' यह कह कर वह शो-केसों को देखने लगी।

'आदमी खाक शॉपिंग कर सकता है इस दोज़ख में ?'

ग़यास ने अटक-अटक कर कहा, 'मुझे अफ़सोस आप······आप अन्दर तशरीफ़ ले चलिए।···जिस चीज़ की ज़रूरत होगी मैं लाकर दूँगा।'

स्त्री ने ग़यास की ओर देखा, 'चलिए।'

गयास तेज क़दमों से आगे बढ़ा, पर्दा हटाया और स्त्री से कहा, 'तशरीफ़ लाइए ।'

स्त्री अंदर के कमरे में प्रविष्ट हो गई और एक कुर्सी पर बैठ गई । गयास ने पर्दा छोड़ दिया । दोनों मेरी नजरों से ओझल हो गये । कुछ क्षणों के बाद गयास निकला और मेरे पास आकर उसने होले से कहा, 'मण्टो साहब, क्या ख्याल है आपका इस लड़की के बारे में ?'

मैं मुस्करा दिया ।

गयास ने एक खाने से विविध प्रकार की लिपस्टिकें निकाली और अन्दर कमरे में ले गया । इतने में जलील की मोटर का हॉर्न बजा और वह उँगली पर चाबी घुमाता हुआ प्रकट हुआ । आते ही उसने पुकारा, 'गयास, गयास ! आओ भई सुनो, वह कल वाला मामला मैंने सब ठीक कर दिया है।' फिर उसने मेरी ओर देखा। 'ओहोह ! मण्टो साहब, आदाब अर्ज । गयास कहां है ?'

मैंने जवाब दिया, 'अन्दर कमरे में ।'

'वह मैंने सब ठीक कर दिया मण्टो साहब ! अभी अभी पेट्रोल पम्प के पास मिस्री—पैदल चली जा रही थी । मैंने मोटर रोकी और कहा, जनाब, यह मोटर आखिर किस मर्ज की दवा है ?' उसे मजाक छोड़कर आ रहा हूँ ।' फिर उसने कमरे के पर्दे की ओर मुँह करके आवाज दी, 'गयास, बाहर निकल बे !'

जलील ने उँगली पर जोर से चाबी घुमाई । 'व्यस्त है । अब इसने अन्दर व्यस्त होना शुरू कर दिया है ।' कहकर उसने आगे बढ़कर पर्दा उठाया; एकदम जैसे उसके झटका-सा लग गया । पर्दा उसके हाथ से छूट गया । 'सॉरी !' कहकर वह उल्टे क़दम वापस आया और घबराये हुए स्वर में उसने मुझसे पूछा, मण्टो साहब, 'कौन कहिए ?'

मैंने पूछा, 'कहाँ कौन ?'

'यह जो अन्दर बैठी होठों पर लिपिस्टिक लगा रही है ।'

मैंने जवाब दिया, मालूम नहीं, ग्राहक है ।'

जलील ने ऐनक के मोटे शीशों के पीछे आँखें सुकेड़ीं और पर्दे की तरफ़ देखने लगा। गयास बाहर निकला; जलील से 'हलो जलील!' कहा और आईना उठाकर वापस कमरे में चला गया। दोनों बार जब पर्दा उठा तो जलील को स्त्री की हल्की-सी झलक नज़र आई। मेरी ओर मुड़कर उसने कहा, 'ऐसा करता है पट्ठा।' फिर बेचैनी की स्थिति में वह इधर-उधर टहलने लगा। थोड़ी देर के बाद पर्दा उठा; स्त्री होंठों को चूसती हुई निकली। जलाल की निगाहों ने उसे स्टोर के बाहर तक पहुँचाया। फिर उसने पलट कर कमरे का रुख किया। गयास बाहर निकला रूमाल से होंठ साफ करता। दोनों एक-दूसरे से क़रीब-क़रीब टकरा गये। जलील ने तीव्र स्वर में उससे पूछा, 'यह क्या क़िस्सा था भई?'

गयास मुस्कराया, 'कुछ नहीं।' यह कहकर उसने रूमाल से होंठ साफ़ किये।

गयास ने जलील के चुटकी भरी, 'कौन थी?'

'यार तुम ऐसी बातें न पूछा करो।' गयास ने अपना रूमाल हवा में लहराया। जलील ने छीन लिया; गयास ने झपट्टा मारकर वापस लेना चाहा।

जलील पैंतरा बदल कर एक ओर हट गया। रूमाल खोल कर उसने गौर से देखा। जगह-जगह लाल निशान थे। ऐनक के मोटे शीशों के पीछे अपनी आँखें सुकेड़ कर उसने गयास को घूरा।

'यह बात है!'

गयास ऐसा चोर बन गया जिसे किसी ने चोरी करते-करते पकड़ लिया हो। 'जाने दो यार, इधर लाओ रूमाल।'

जलील ने रूमाल वापस कर दिया, 'बताओ तो सही कौन थी?'

इतने में नौकर लेमन लेकर आगया, गयास ने उसे इतनी देर लगाने पर झिड़का, 'कोई मेहमान आये तो तुम हमेशा ऐसा ही किया करते हो।'

गयास ने जलील से पूछा, 'यह लेमन उसी के लिए मँगवाया गया था।'

'हाँ यार, इतनी देर में आया है कमबख्त। दिल में कहती होगी प्यासा ही भेज दिया।' गयास ने रूमाल जेब में रख लिया।

जलील ने शो-केस पर से लेमन का गिलास [illegible]।

'हमारी प्यास तो बुझ गई; लेकिन यार व
मुलाकात में तुमने हाथ साफ कर दिया।'

गयास ने रूमाल निकाल कर अपने होंठ
कहा, 'मिमट ही गई; मैंने कहा देखो ठीक नहीं
मेरे होठों का चुम्मा ले गई।'

एकदम मसूद की आवाज आई, सब बकाव
गयास चौंक पड़ा। मसूद स्टोर के बाहर
किया और चल दिया। जलील फौरन ही ग
यार, तुम बताओ फिर क्या हुआ? यार चौक

गयास ने जवाब न दिया। मसूद की आ
चौंकना-सा गया था। जलील को एकदम याद
ही जरूरी काम पर निकला है।' उँगली पर व
कहा, 'लड़की के बारे में फिर पूछूँगा। अस्स
लैकुम।' और चला गया।

मैंने मुस्कराकर गयास से पूछा, 'गयास
मुलाकात में आपने ...।'

गयास झेंप गया; मेरी बात काटकर उसने
आप हमारे बुजुर्ग हैं। चलिए अन्दर बैठें, यहाँ गर्द

हम अन्दर कमरे की ओर चलने लगे तो स्टोर
रुकी। उसने जोर-जोर से हार्न बजाया। मसूद
अन्दर आया। 'गयास अन्दर आओ; बस स्टैण्ड
लड़की खड़ी है।'

गयास उसके साथ चला गया; मैं मुस्कराने लग

इस दौरान में जलील ने बड़ी मुश्किल से अ
एक क्रिश्चियन लड़की नौकर रख ली। उसे बहु
कई बार मोटर में उसे अपने साथ लाया; लेकिन
...। गयास को इस बात पर बड़ा क्रोध था।

गयास ने जलील से मज़ाक किया तो वह बहुत सिटपिटाया। उसके कान की लवें सुर्ख हो गईं। नज़रें झुकाकर उसने गाड़ी स्टार्ट की और यह जा; वह जा।

... वकौल जलील के यह स्टैनो शुरू-शुरू में तो बड़ी रिज़र्व रही, लेकिन आखिर उससे घुल ही गई, 'बस अब चन्द दिनों ही में मामला पटा समझो।'

गयास अब ज्यादातर जलील से स्टैनो की बातें करता। जलील उससे उस लड़की के बारे में पूछता जिसने चिमट कर उसे चूम लिया था तो गयास आम तौर पर यह कहता, 'कल उसका टेलीफ़ोन आया, पूछने लगी 'आऊँ?' मैंने कहा, 'यहाँ नहीं; तुम वक्त निकालो तो मैं किसी और जगह का इन्तजाम कर लूँगा।'

जलील उससे पूछता, 'क्या कहा उसने ?'

गयास उत्तर देता, 'तुम अपनी स्टैनो की सुनाओ।'

स्टैनो की बातें शुरू हो जातीं।

एक दिन मैं और गयास दोनों जलील के प्रेस गये; मुझे अपनी किताब के टाइटिल कवर के डिजाइन के बारे में मालूम करना था। दफ्तर में स्टैनो एक कोने में बैठी थी। लेकिन जलील नहीं था। स्टैनो से पूछा तो मालूम हुआ कि वह अभी-अभी बाहर निकला है। मैंने नौकर को भेजा कि उसे हमारे आगमन की सूचना दे। थोड़ी ही देर के बाद जलील आ गया। चिक उठाकर उसने मुझे सलाम किया और गयास से कहा, 'इधर आओ गयास !'

हम दोनों बाहर निकले। गयास को एक कोने में ले जाकर जलील ने लकर गयास से कहा, मैदान मार लिया। अभी-अभी तुम्हारे आने से देर पहले !' यह कहकर रुक गया और मुझसे सम्बोधित हुआ, ...जिएगा मण्टो साहब।' फिर उसने गयास को जोर से अपने साथ ...। 'बस मैंने आज उसे पकड़ लिया—बिल्कुल इसी तरह—और इस ट्रेडल के पास।'

गयास ने पूछा, 'किसे ?'

जलील झुंझला गया। 'अबे अपनी स्टैनो को; कसम खुदा की मजा आ गया। यह देखो।' उसने अपना रूमाल पतलून की जेब से निकालकर हवा में लहराया : उस पर सुर्खी के धब्बे थे।

एकदम मसूद की आवाज आई, 'बकवास है, महज खुद फरेबी है।'

जलील और गयास चौंक उठे। मैं मुस्कराया : रूमाल के तवे पर सुर्ख रंग की पतली-सी समतल तह फैली हुई थी। एक जगह पोंछने के कारण कुछ लकीरें पड़ गई थीं।

बर्मी लड़की

ज्ञान की शूटिंग थी इसलिए किफायत जल्दी सो गया। फ्लैट में और कोई नहीं था। बीवी-बच्चे रावलपिंडी चले गये थे। पड़ोसियों से उसे कोई दिलचस्पी नहीं थी। यों भी बम्बई में लोगों को अपने पड़ोसियों से कोई सरोकार नहीं होता। किफायत ने अकेले ब्राण्डी के चार पेग पिये, खाना खाया, नौकरों को छुट्टी दी और दरवाजा बन्द करके सो गया।

रात के पाँच बजे के लगभग किफायत के खुमार-भरे कानों को धक की आवाज सुनाई दी। उसने आँखें खोली—नीचे बाजार में एक ट्राम दनदनाती हुई गुजरी। कुछ क्षण बाद दरवाजे पर बड़े जोरों की दस्तक हुई। किफायत उठा; पलंग से उतरा तो उसके नंगे पैर टखने तक पानी में चले गये। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि कमरे में इतना पानी कहाँ से आया और बाहर कॉरीडोर में इससे भी अधिक पानी था। दरवाजे पर दस्तक जारी थी; उसने पानी के बारे में सोचना छोड़ा और दरवाजा खोला।

ज्ञान ने जोर से कहा, 'यह क्या है?'

किफायत ने उत्तर दिया, 'पानी।'

'पानी नहीं, औरत!' यह कहकर ज्ञान आधे अँधियारे कॉरीडोर में दाखिल हुआ, उसके पीछे एक छोटे-से कद की लड़की थी।

ज्ञान को फर्श पर फैले हुए पानी का कुछ एहसास न हुआ। लड़की ने पाजामा ऊपर उठा लिया और छोटे-छोटे कदम उठाती ज्ञान के पीछे चली आई।

किफायत के मस्तिष्क में पहले पानी था, अब यह लड़की उसमें प्रविष्ट हो गई और डुबकियाँ लगाने लगी। सबसे पहले उसने सोचा कि यह कौन है—

शकल व सूरत तथा वस्त्रों से वर्मी मालूम होती है ! लेकिन ज्ञान उसे कहां से लाया ?

ज्ञान अन्दर के कमरे में जाकर कपड़े तब्दील किये विना ही पलंग पर लेटा और लेटते ही सो गया । किफायत ने उससे बात करनी चाही किन्तु उसने केवल हूं-हां में उत्तर दिया और आंखें न खोलीं । किफायत ने उस लड़की की ओर एक नजर देखा जो सामने वाले पलंग पर बैठी थी; और बाहर निकल गया ।

रसोई में जाकर उसे ज्ञात हुआ कि रबर का वह पाइप, जो रात को बड़ा ड्राम भरा करता था, बाहर निकला हुआ है । तीन बजे जब नल में पानी आया तो उससे तमाम कमरों में बाढ़ आ गई ! तीनों नौकर बाहर गली में सो रहे थे । किफायत ने उन्हें जगाया और पानी निकालने के काम पर लगा दिया । वह खुद भी उनके साथ शरीक था । सब चुल्लुओं से पानी उठाते थे और बाल्टियों में डालते जाते थे । उस वर्मी लड़की ने उन्हें जब यह काम करते देखा तो झटपट सैण्डल उतार कर उनका हाथ बटाने लगी ।

उसके छोटे, गोरे हाथ, उंगलियों के नाखून बढ़ाये हुए और सुर्खी लगे नहीं थे । छोटे-छोटे कटे हुये बाल थे जिनमें हल्की-हल्की लहरें थीं । मर्दाना किस्म का लेकिन खुला रेशमी पाजामा पहने थी । उस पर काले रंग का रेशमी कुरता था जिसमें उसकी छोटी-छोटी छातियां छिपी हुई थीं ।

जब उसने उन लोगों का हाथ बटाना शुरू किया तो किफायत ने उसे मना किया, 'आप तकलीफ न कीजिये, यह काम हो जायगा ।'

उसने कोई जवाब न दिया । छोटे-छोटे सुर्खी लगे होटों से मुस्कराई और काम में लगी रही । आधे घण्टे के अन्दर-ही-अन्दर तीनों कमरों से पानी निकल गया । किफायत ... 'चलो यह भी अच्छा हुआ । इसी बहाने सारा घर धुलकर साफ

वह ... के लिए स्नानागार में चली गई । किफायत

कमर ... बिस्तर पर लेटा—नींद पूरी नहीं हुई थी,

सो

लगभग नौ बजे वह जगा और जागते ही उसे सबसे पहले पानी का विचार आया; फिर उसने बर्मी लड़की के बारे में सोचा जो ज्ञान के साथ आई थी। कहीं ख्वाब तो नहीं था; लेकिन वह सामने ज्ञान सो रहा है और फर्श भी धुला हुआ है।

किफायत ने गौर से ज्ञान की ओर देखा; वह पतलून, कोट बल्कि जूते समेत औंधा सो रहा था, किफायत ने उसे जगाया, उसने एक आंख खोली और पूछा, 'क्या है ?'

'वह लड़की कौन है ?'

ज्ञान एकदम चौंका। 'लड़की ! कहाँ है ?' फिर फौरन ही चित्त लेट गया। 'ओह बकवास न करो, ठीक है।'

किफायत ने उसे फिर जगाने की कोशिश की पर वह खामोश सोया रहा। उसे साढ़े नौ बजे अपने काम पर जाना था। उसने जल्दी-जल्दी स्नान किया, शेव भी स्नानागार के अन्दर ही कर लिया। बाहर निकल कर ड्राइंग रूम में गया तो उसे मेज सजी हुई नजर आई।

सुबह नाश्ते पर आम तौर पर किफायत के यहाँ बहुत ही थोड़ी-सी चीजें होती थीं। दो उबले हुए अण्डे, दो टोस्ट, मक्खन और चाय। मगर आज मेज रंगीन थी, उसने गौर से देखा छिले हुए अण्डे विचित्र ढंग से कटे हुए थे कि फूल मालूम होते थे। सलाद था, बड़े सुन्दर ढंग से प्लेट में सजा हुआ। टोस्टों पर भी मीनाकारी की हुई थी। किफायत चकरा गया। रसोई में गया तो वह बर्मी लड़की चौकी पर बैठी सामने अंगीठी रखे कुछ बना रही थी। दोनों नौकर उसके इर्द-गिर्द थे और हँस-हँसकर उससे बातें कर रहे थे। किफायत को देखकर वे उठ खड़े हुए। बर्मी लड़की ने आँखें घुमाकर उसकी ओर देखा और मुस्करा दी।

किफायत ने उनसे बात करनी चाही लेकिन वह कैसे करता; उससे क्या कहता ? वह उसे जानता तक नहीं था। उसने अपने एक नौकर से सिर्फ इतना पूछा, 'नाश्ता आज किसने तैयार किया है बशीर ?'

बशीर ने उस बर्मी लड़की की ओर संकेत किया, 'बाईजी ने !'

समय बहुत कम था। किफायत ने जल्दी-जल्दी उसका सजीला नाश्ता खाया और कपड़े पहनकर अपने आफिस को चला गया। शाम को वापस आया तो वह बर्मी लड़की उसके स्लीपिंग सूट का इकलौता पाजामा पहने अपने कुर्ते पर इस्तरी कर रही थी। किफायत पीछे हट गया, क्योंकि वह सिर्फ पाजामा पहने थी।

'आ जाइए।'

लहजा बड़ा साफ-सुथरा था। किफायत ने सोचा कि बर्मी लड़की की बजाय शायद कोई और बोला है। जब वह अन्दर गया तो उस लड़की ने छोटे-छोटे होंठों पर मुस्कराहट पैदा करके उसे सलाम किया। किफायत की उपस्थिति में उसने कोई पर्दा अनुभव नहीं किया, बड़े संतोष के साथ वह अपने कुर्ते पर इस्तरी करती रही। किफायत ने देखा उसकी छोटी-छोटी गोल छातियों के दरम्यानी हिस्से में इस्तरी की गर्मी के कारण पसीने की नन्हीं-नन्हीं बूंदें जमा हो गई थीं।

किफायत ने शान के बारे में पूछने के लिए बशीर को आवाज देनी चाही पर रुक गया। उसने ऐसा करना उचित न समझा क्योंकि वह लड़की आधी नंगी थी। उसने हैट उतार कर रखा। थोड़ी देर इस अर्ध-नग्नता को देखा लेकिन कोई उत्तेजना अनुभव नहीं की। लड़की का शरीर बेदाग था; त्वचा बहुत ही कोमल थी। इतनी कोमल कि निगाहें फिसल-फिसल जाती थीं।

कुर्ते पर इस्तरी हो गई तो उसने स्विच आफ किया। एक कुर्ता और भी था सफेद वोस्की का जो तह किया हुआ इस्तरी शुदा पाजामे पर रखा था। उसने ये सब कपड़े उठाये और किफायत से बोली, 'मैं नहाने चली हूं।'

यह कहकर वह नहाने चली गई। किफायत टोपी उतार कर सिर खुजलाने लगा। 'कौन है यह?'

उसके दिमाग में बड़ी खुदबुद हो रही थी। जब भी वह उस लड़की के में सोचता सारी घटना उसके सामने आ जाती। रात को उसका उठना —-ही-पानी; उसका दरवाजा खोलना और कहना, 'पानी!' और शान का उत्तर देना, 'पानी नहीं औरत!' और एक नन्हीं सी गुड़िया का छम से आ जाना।

किफ़ायत ने दिल में कहा, 'हटाओ जी, ज्ञान आयगा तो सब कुछ मालूम हो जायगा। लौंडिया है दिलचस्प। इतनी छोटी है कि जी चाहता है कि आदमी जेब में रखले। चलो ब्रांडी पियें।'

बशीर ने ग्लास, ब्रांडी और बर्फादि सब कुछ ड्राइंग रूम में तिपाई पर रख दिया था। किफ़ायत ने कपड़े बदले और पीनी शुरू कर दी। पहला पेग खत्म किया तो उसे स्नानागार के दरवाजा खुलने की 'चूं' सुनाई दी। दूसरा पेग डालकर वह प्रतीक्षा करने लगा कि थोड़ी ही देर में वह बर्मी लड़की जरूर इधर आयेगी। परन्तु उसके नियत चार पेग समाप्त हो गए और वह न आई; ज्ञान भी न आया। किफ़ायत झुँझला गया। अन्दर बैड रूम में जाकर उसने देखा वह लड़की इस्तरी किए हुए कपड़े पहने अपनी गोल-गोल छातियों पर हाथ रखे बड़ी निश्चिन्तता से सो रही थी। इस्तरी वाली मेज पर उसके स्लीपिंग सूट का इकलौता पाजामा बड़ी अच्छी तरह तह किया हुआ रखा था।

किफ़ायत ने वापस जाकर ब्रांडी का एक डबल पेग ग्लास में डाला और 'नीट' ही चढ़ा गया। थोड़ी देर के बाद उसका सिर घूमने लगा; उसने बर्मी लड़की के बारे में सोचने की कोशिश की मगर उसने ऐसा महसूस किया कि वह चुल्लुओं में पानी भर-भर के उसके मस्तिष्क में डाल रही है। खाना खाये बिना वह सोफे पर लेट गया और उस बर्मी लड़की के सम्बन्ध में कुछ सोचने की चेष्टा करते हुए सो गया।

सुबह हुई तो उसने देखा कि वह सोफे की बजाय अन्दर पलंग पर है। उसने अपनी स्मरण-शक्ति पर जोर दिया—'मैं रात कब आया यहाँ? क्या मैंने खाना खाया था?'

किफ़ायत को कोई जवाब न मिला। सामने वाला पलंग खाली था। उसने जोर से बशीर को आवाज दी; वह भागा हुआ अन्दर आया। किफ़ायत ने उससे पूछा, 'ज्ञान साहब कहाँ हैं?'

बशीर ने जवाब दिया, 'रात को नहीं आये।'

'क्यों?'

मालूम नहीं साहब!'

'वह बाईजी कहाँ हैं ?'

'मछली तल रही हैं ।'

किफायत के दिमाग में मछलियाँ तली जाने लगीं । उठकर रसोई में गया तो वह चौकी पर बैठी सामने अँगीठी पर मछली तल रही थी । किफायत को देखकर उसके होंठों पर एक छोटी-सी मुस्कान पैदा हुई । हाथ उठाकर उसने सलाम किया और अपने कार्य में लीन हो गई । किफायत ने देखा तीनों नौकर बहुत प्रसन्न थे और बड़ी कार्यसाधकता से उस लड़की का हाथ बटा रहे थे ।

बशीर को कुछ दिनों की छुट्टी पर अपने घर जाना था । कई दिनों से वह बार-बार कहता था कि साहब मुझे तनख्वाह दे दीजिए : मेरे पास घर से कई खत आ चुके हैं, माँ बीमार है । रात को वह उसे तनख्वाह देना भूल गया था । अब उसे याद आया तो उसने बशीर से कहा, 'इधर आओ बशीर, अपनी तनख्वाह ले लो । मैं कल दफ्तर से रुपये ले आया था ।'

बशीर ने वेतन ले लिया । किफायत ने उससे कहा, 'नौ बजे गाड़ी जाती है, उसी से चले जाओ ।'

'अच्छा जी !' कहकर बशीर चला गया ।

नाश्ता बहुत स्वादिष्ट था; विशेषकर मछली के टुकड़े । उसने खाना शुरू करने से पहले बशीर के जरिये उस बर्मी लड़की को बुला भेजा, मगर वह न आई । बशीर ने कहा, 'जी वह कहती हैं कि मैं नाश्ता बाद में करूंगी ।'

किफायत की आर्थिक स्थिति बहुत पतली थी; ज्ञान भी इसमें अपवाद न था । दोनों इधर-उधर से पकड़कर निर्वाह कर रहे थे । ब्रांडी का प्रबन्ध ज्ञान कर देता था; बाकी खाने-पीने का सिलसिला भी किसी-न-किसी तरह चल ही रहा था । जिस फिल्म कम्पनी में ज्ञान काम कर रहा था, उसका दीवाला निकलने ही वाला था किन्तु उसे विश्वास था कि कोई चमत्कार निश्चय ही होगा और उसकी कम्पनी सँभल जायेगी । शूटिंग हो रही थी, शायद इसीलिए रात भी न आ सका था ।

नाश्ता करने के पश्चात किफायत ने झाँककर रसोई में देखा . लड़की अपने कार्य में निमग्न थी, तीनों नौकर उससे हँस-हँसकर बातें कर रहे थे। किफायत ने वसीर से कहा, 'मछली बहुत अच्छी थी।'

लड़की ने मुड़कर देखा : उसके होंठो पर छोटी-सी मुस्कराहट थी।

किफायत दफ्तर चला गया, उसे आशा थी कि कुछ रुपयों का प्रबन्ध हो जायगा। लेकिन खाली जेब वापस आया। बर्मी लड़की अन्दर बड़े रूम में लेटी सचित्र पत्रिका देख रही थी। किफायत को देखकर बैठ गई और सलाम किया।

किफायत ने सलाम का जवाब दिया और उससे पूछा, 'ज्ञान साहब आये थे?'

'आये थे दोपहर को; खाना खाकर चले गये। फिर शाम को आये कुछ मिनटों के लिए।' यह कहकर उसने एक ओर को हटकर तकिया उठाया और कागज में लिपटी हुई बोतल निकाली। 'यह दे गये थे कि आपको दे दूँ।'

उसने बोतल पकड़ी, कागज पर ज्ञान के ये शब्द थे :

'कमबख्त यह चीज किसी न किसी तरह मिल जाती है, लेकिन पैसा नहीं मिलता। बहर हाल ऐश करो।' —तुम्हारा ज्ञान

उसने कागज खोला ब्रांडी की बोतल थी। बर्मी लड़की ने किफायत की तरफ देखा और मुस्कराई; किफायत भी मुस्करा दिया, 'आप पीती हैं?'

लड़की ने जोर से सिर हिलाया, 'नहीं।'

किफायत ने नजर भरकर उसे देखा और सोचा, 'क्या छोटी-सी नन्ही-मुन्नी गुड़िया है।'

उसका जी चाहा कि उसके साथ बैठकर बातें करे। अतः उससे सम्बोधित हुआ, 'आइए इधर दूसरे कमरे में बैठते हैं।'

'नहीं, मैं कपड़े धोऊँगी।'

'इस समय?'

'इस समय अच्छा होता है; रात धोये, सुबह सूख गये । उठते ही इस्तरी कर लिये ।'

किफायत थोड़ी देर खड़ा रहा; उसे कोई बात न सूझी तो ड्राइंग रूम में बैठकर ब्रांडी पीनी शुरू कर दी । खाने का वक्त हो गया । उसने बर्मी लड़की को बुलाया पर उसने कहा :

'मैं ज्ञान साहब के साथ खाऊँगी ।'

किफायत ने खाना खाया और उसके पलंग पर सो गया । रात के लगभग एक बजे उसकी आँख खुली : चाँदनी रात थी; हल्की-हल्की रोशनी कमरे में फैली हुई थी । हवा भी बड़े मजे की चल रही थी । करवट बदली तो देखा सामने पलंग पर एक छोटी-सी सुडौल गुड़िया ज्ञान के चौड़े, बालों भरे सीने के साथ चिमटी हुई है । किफायत ने आँखें बन्द कर लीं । थोड़ी देर के बाद ज्ञान की आवाज आई, 'जाओ, अब मुझे सोने दो; कपड़े पहन लो ।

स्प्रिंगों वाले पलंग की आवाज के साथ रेशम की सरसराहटें किफायत के कानों में दाखिल हुईं । थोड़ी देर के बाद किफायत सो गया । सुबह छः बजे उठा क्योंकि वह रात यह सोचकर सोया था कि सुबह जल्दी उठेगा । उसे ट्राम की बहुत लम्बी यात्रा तै करके एक आदमी के पास जाना था जिससे उसे कुछ मिलने की उम्मीद थी । पलंग से उतरा तो उसने देखा कि बर्मी लड़की नंगे फर्श पर उसके स्लीपिंग सूट का इकलौता पाजामा पहने अपने छोटे-से सुडौल बाज़ू सिर के नीचे रखे बड़े सुकून से सो रही है । किफायत ने उसको जगाया; उसने अपनी काली-काली आँखें खोलीं । किफायत ने उससे कहा, 'आप यहाँ क्यों लेटी हैं ?'

उसके छोटे-छोटे होंठों पर नन्हीं-सी मुस्कराहट पैदा हुई; उठकर उसने जवाब दिया, 'ज्ञान को आदत नहीं किसी को अपने पास सुलाने की ।'

किफायत को ज्ञान की इस आदत का पता था । उसने लड़की से कहा, 'जाइए मेरे पलंग पर लेट जाइए ।'

लड़की उठी और किफायत के पलंग पर लेट गई ।

किफायत स्नानागार में गया । वहाँ रस्सी पर बर्मी लड़की के कपड़े लटक

रहे थे। किफायत साबुन मलकर नहाने लगा तो, उसका ख्याल उस लड़की के मुलायम जिस्म की तरफ चला गया जिस पर से निगाहें फिसल-फिसल जाती थीं।

स्नान करके किफायत ने कपड़े पहने। चूंकि जल्दी में था इसलिए ज्ञान को जगाकर उससे कोई बात न कर सका। सुबह का निकला रात के ग्यारह बजे वापस आया—जेबें खाली थी। बेड रूम में गया ज्ञान और बर्मी लड़की दोनों इकट्ठे सोये हुए थे। किफायत ने ड्राइंग रूम में बैठकर ब्रांडी पीनी शुरू कर दी। बहुत थका हुआ था, मायूस वापस आया था। बर्मी लड़की के सम्बन्ध में सोचता-सोचता वहीं सोफे पर सोगया। सुबह पांच बजे उठा। तिपाई पर उसका चौथा पेग पानी में पड़ा बासी हो रहा था।

किफायत उठा; बेड रूम के नंगे फर्श पर बर्मी लड़की सो रही थी। ज्ञान अलमारी के आईने के सामने खड़ा टाई बांध रहा था। टाई की गिरह ठीक करके उसने दोनों हाथों में लड़की को उठाया और अपने पलंग पर लिटा दिया। मुड़ा तो उसने किफायत को देखा, 'क्यों भई, कुछ बन्दोबस्त हुआ रुपयों का ?'

किफायत ने निराशापूर्ण स्वर में उत्तर दिया, 'नहीं।'

'तो मैं जाता हूं; देखो शायद कुछ हो जाये।'

पूर्व इसके कि किफायत उसे रोके ज्ञान तेजी से बाहर निकल गया। दरवाजा खुला तो उसकी आवाज आई, 'तुम भी कोशिश करना किफायत।'

किफायत ने पलट कर पलंग की तरफ देखा : लड़की बड़े सुकून के साथ सो रही थी। उसके नन्हें-से सीने पर छोटी-छोटी गोल-गोल छातियां चमक रही थीं। किफायत कमरे से निकल कर स्नानागार में चला गया। अन्दर रस्सी पर लड़की के धुले हुए कपड़े लटक रहे थे।

नहा-धोकर बाहर निकला तो उसने देखा लड़की नौकरों के साथ नाश्ता तैयार करने में व्यस्त थी। नाश्ता करके बाहर निकल गया।

चार दिन इसी प्रकार गुजर गये। किफायत को उस लड़की के बारे में कुछ मालूम न हो सका। ज्ञान कभी रात को देर से आता था, कभी दिन को बहुत जल्दी निकल जाता था। यही हाल किफायत का था; दोनों परेशान थे।

पांचवें रोज जब वह सुबह उठा तो बशीर ने किफायत को ज्ञान का पर्चा दिया। उसमें लिखा था : 'खुदा के लिए किसी-न-किसी तरह दस रुपये पैदा करके बर्मी लड़की को दे दो।'

लड़की खड़ी इस्तरी कर रही थी, केवल ब्लाउज की आस्तीन बाकी रह गई थी जिस पर वह बड़े सलीके से इस्तरी फेर रही थी। किफायत ने उसकी ओर देखा। जब उनकी निगाहें चार हुईं तो बर्मी लड़की मुस्करा दी। किफायत सोचने लगा कि वह दस रुपये कहां से पैदा करे। बशीर पास खड़ा था, उसने किफायत से कहा : 'साहब, इधर आइए।'

किफायत ने पूछा, 'क्या बात है?'

'जी कुछ कहना है।'

बशीर ने एक ओर हटकर दस रुपये का नोट निकाला और किफायत को दे दिया। 'मैं नहीं गया अभी तक साहब।'

किफायत नोट लेकर सोचने लगा, 'नहीं, नहीं। तुम रखो लेकिन तुम गये क्यों नहीं अभी तक?'

'साहब, चला जाऊँगा कल-परसों। आप रखिए ये रुपये।'

किफायत ने नोट जेब में डाल लिया, 'अच्छा मैं शाम को लौटा दूंगा तुम्हें।'

कपड़े-वपड़े पहनकर जब बर्मी लड़की नाश्ता कर चुकी तो किफायत ने उसे दस रुपये का नोट दिया और कहा, 'ज्ञान साहब ने दिया था कि आपको दे दूँ।'

लड़की ने नोट ले लिया और बशीर को आवाज दी। बशीर आया तो उसने कहा, 'जाओ टैक्सी ले आओ।'

बशीर चला गया तो किफायत ने उससे पूछा, 'आप जा रही हैं?'

'जी हाँ।'

यह कहकर वह उठी और बेड रूम में चली गई। वह अपना रूमाल इस्तरी करना भूल गई थी। किफायत ने उससे बातें करने का इरादा किया तो क्सी आ गई। रूमाल हाथ में लेकर वह रवाना होने लगी। किफायत को

सलाम किया और कहा, 'अच्छा जी, मैं चलती हू । ज्ञान को मेरा सलाम बोला देना।'

फिर उसने तीनों नौकरो से हाथ मिलाये और चली गई। सबके चेहरे पर उदासी छा गई।

पौने घण्टे के बाद ज्ञान आया। वह कुछ लेकर आया था। आते ही उसने किफायत से पूछा, 'कहाँ है वह बर्मी लड़की?'

'चली गई।'

'कैसे ? दस रुपये दिये थे तुमने उसे ?'

'हाँ ?'

'तो ठीक है।' ज्ञान कुर्सी पर बैठ गया।

किफायत ने पूछा, 'कौन थी यह लड़की ?'

'मालूम नहीं।'

किफायत सिर से पैर तक आश्चर्य की मूर्ति बन गया। 'क्या मतलब ?'

ज्ञान ने उत्तर दिया, 'मतलब यही कि मैं नहीं जानता कौन थी।'

'झूठ।'

'तुम्हारी कसम सच कहता हूं।'

किफायत ने पूछा, 'कहाँ से मिल गई थी तुम्हें ?'

ज्ञान ने टाँगें मेज पर रख दी और मुस्कराया। 'अजीब दास्तान है यार ! पानी की बाढ़ आने वाली रात मैं शकर के यहाँ चला गया। वहाँ बहुत पी। अन्धेरी स्टेशन से गाड़ी में सवार हुआ तो सो गया। गाड़ी मुझे सीधी चर्च गेट ले गई। वहाँ मुझे चौकीदार ने जगाया, 'उठो।' मैंने कहा, 'भाई, मुझे ग्रांट रोड जाना है।' चौकीदार हँसा, 'आप तीन स्टेशन आगे चले आये हैं।' उतरा। दूसरे प्लेटफार्म पर अन्धेरी जाने वाली आखिरी गाड़ी खड़ी थी, मैं उसमें सवार हो गया। गाड़ी चली तो फिर मुझे नींद आ गई। सीधा अन्धेरी पहुंच गया।'

किफायत ने पूछा, 'मगर इसका लड़की से क्या सम्बन्ध ?'

'तुम सुन तो लो।' ज्ञान ने सिगरेट सुलगाया। 'अन्धेरी पहुंचा। यानी जब

मेरी आंख खुली तो क्या देखता हूं कि मैं एक छोटी-सी लौंडिया के साथ लिपटा हुआ हूं। पहले तो मैं डरा, वह जाग रही थी। मैंने पूछा, 'कौन हो तुम ?' वह मुस्कराई। मैंने फिर पूछा, 'कौन हो भई तुम ?' वह मुस्कराई और कहने लगी, 'तो इतनी देर से मुझे चूमते रहे और अब पूछते हो मैं कौन हूं ?' मैंने चकित भाव से कहा, 'अच्छा !' वह हंसने लगी। मैंने दिमाग पर जोर देकर सोचना उचित न समझा और उसे अपने साथ भींच लिया। सुबह तीन बजे तक हम दोनों प्लेटफार्म की एक बेंच पर सोते रहे। साढ़े तीन की पहली गाड़ी आई तो उसमें सवार हो गए। मेरा विचार था कि प्रबन्ध करके उसे कुछ रुपये दूंगा—यहां पहुंचे तो पानी का तूफान आया हुआ था। है ना दिलचस्प दास्तान ?'

लियाकत ने कहा, 'काफी दिलचस्प है। मगर वह इतने दिन क्यों रही यहां ?'

शान ने सिगरेट फर्श पर फेंका, 'वह कहां रही, मैंने उसे रखा। असल में वह यों रही कि मेरे पास कुछ था ही नहीं, जो उसे देता। दस दिन गुजरते गये। मैं बेहद शर्मिन्दा था। कल रात मैंने उससे साफ कह दिया, 'देखो भई, दिन बढ़ते जा रहे हैं। तुम ऐसा करो मुझे अपना पता दे दो। मैं तुम्हारा हक तुम्हें वहीं पहुंचा दूंगा। आजकल मेरा हाल बहुत पतला है।'

लियाकत ने पूछा, 'यह सुनकर उसने क्या कहा ?'

शान ने सिर हिलाया। अजीब ही लड़की थी। कहने लगी, 'यह क्या कहते हो,' मैंने तुमसे कब मांगा है ? लेकिन दस रुपये मुझे दे देना। मेरा घर यहां से बहुत दूर है; टैक्सी में जाऊंगी। मेरे पास एक पैसा भी नहीं।'

लियाकत ने प्रश्न किया, 'नाम क्या था उसका ?'

[illegible] लगा।

[illegible] टांगें मेज पर से हटाईं, 'नहीं यार, मैंने उससे नाम नहीं [illegible]

[illegible] लगे।

खुशिया

खुशिया सोच रहा था।

बनवारी से काले तम्बाकू वाला पान लेकर वह उसकी दुकान के साथ उस पत्थर के चबूतरे पर बैठा था जो दिन के वक्त टायरों और मोटरों के विभिन्न पुर्जों से भरा होता है। रात को साढ़े आठ बजे के करीब मोटर के पुर्जे और टायर बेचने वालों की यह दुकान बन्द हो जाती है और यह चबूतरा खुशिया के लिए खाली हो जाता है।

वह काले तम्बाकू वाला पान धीरे धीरे चबा रहा था और सोच रहा था कि गाढ़ी तम्बाकू मिली पीक उसके दाँतों की रीखों से निकलकर उसके मुँह में इधर-उधर फिसल रही थी और उसे ऐसा लगता था कि उसके विचार दाँतों तले उसकी पीक में घुल रहे हैं। शायद यही कारण है कि वह उसे फेंकना नहीं चाहता था।

खुशिया पान की पीक मुँह में पुलपुला रहा था और उस घटना के बारे में सोच रहा था जो उसके साथ अभी-अभी घटी, यानी आध घंटे पहले।

वह उस चबूतरे पर नित्य की भाँति बैठने से पहले खेतवाड़ी की पाँचवीं गली में गया था। मंगलौर से जो नयी छोकरी कान्ता आई थी, उसी के नुक्कड़ पर रहती थी। खुशिया से किसी ने कहा था कि वह अपना मकान बदल रही है अतएव इसी बात का पता लगाने के लिए वहाँ गया था।

कान्ता की खोली का दरवाजा उसने खटखटाया। अन्दर से आवाज आई, 'कौन है?' इस पर खुशिया ने कहा, 'मैं खुशिया!'

आवाज दूसरे कमरे से आई थी। थोड़ी देर बाद दरवाजा खुला। खुशिया अन्दर घुसा। जब कान्ता ने दरवाजा अन्दर से बन्द कर लिया, तब खुशिया ने मुड़कर देखा। उसके आश्चर्य की कोई सीमा न रही, जब उसने कान्ता को बिलकुल नंगी देखा, बिलकुल नंगी ही समझो क्योंकि वह अपने अंगों को सिर्फ एक तौलिये से छिपाये हुए थी। छिपाये हुए भी तो नहीं कहा जा सकता क्योंकि छिपाने की जितनी चीजें होती हैं वे सब-की-सब खुशिया की चकित आँखों के सामने थीं।

'कहो खुशिया, कैसे आए? ·····मैं अब नहाने ही वाली थी। बैठो, बैठो···बाहर चाय वाले से अपने लिए एक कप चाय के लिए तो कह आये होते···जानते हो, वह मुआ रामू यहाँ से भाग गया है।'

खुशिया जिसकी आँखों ने कभी औरत को यों अचानक नंगा नहीं देखा था, बेहद घबरा गया। उसकी समझ में न आता था कि क्या कहे। उसकी निगाहें जो एकदम नग्नता से चार हो गयी थीं, वह अपने आपको कहीं छिपाना चाहती थीं।

उसने जल्दी-जल्दी सिर्फ इतना कहा, 'जाओ···जाओ तुम नहा लो!' फिर एकदम उसकी जबान खुल गई, 'पर जब तुम नंगी थीं तो दरवाजा खोलने की क्या जरूरत थी?···अन्दर से कह दिया होता, मैं फिर आ जाता······ लेकिन जाओ···तुम नहा लो।'

कान्ता मुस्कराई, 'जब तुमने कहा—मैं हूं खुशिया, तो मैंने सोचा क्या हर्ज है, अपना खुशिया ही तो है, आने दो···।

कान्ता की यह मुस्कराहट अभी तक खुशिया के दिल-दिमाग में तैर रही थी। इस वक्त भी कान्ता का नंगा जिस्म मोम के पुतले की तरह उसकी आँखों के सामने खड़ा था और पिघल-पिघल कर उसके अन्दर जा रहा था।

उसका जिस्म सुन्दर था। पहली बार खुशिया को मालूम हुआ था कि शरीर बेचने वाली औरतें भी ऐसा सुडौल शरीर रखती हैं। उसको इस बात पर हैरत हुई थी। पर सबसे अधिक आश्चर्य उसे इस बात पर हुआ

था कि नग-धड़ंग वह उसके सामने खड़ी हो गई और उसको लाज तक न आई क्यों ?

इसका जवाब कान्ता ने यह दिया था'''जब तुमने कहा सुनिया है, तो मैंने सोचा क्या हर्ज है, अपना सुनिया ही तो है'''आने दो।'

कान्ता और सुनिया एक ही पेशे में शरीक थे। वह उसका दल्लाल था इस दृष्टि से वह उसी का था'''पर यह कोई कारण नहीं था कि वह उसके सामने नंगी हो जाती। कोई मात बात थी। कान्ता के शब्दों में सुनिया कोई और ही अर्थ कुरेद रहा था।

यह अर्थ एक ही समय इतना स्पष्ट और इतना अस्पष्ट था कि सुनिया किसी खास नतीजे पर नहीं पहुंच सका था। उस समय भी वह कान्ता के नंगे शरीर को देख रहा था जो ढोलकी पर मढ़े हुए चमड़े की भांति तना हुआ था। उसकी घुड़कती हुई निगाहों से बिलकुल बेपरवाह। कई बार उस विमूढ़ स्थिति में भी उसने उसके साँवले-सलोने शरीर पर टोह लेने वाली निगाहें गाड़ी थीं, पर उसका एक रोंआ तक भी न कपकंपाया था। बस उस साँवले पत्थर की मूर्ति के समान वह खड़ी रही जो अनुभूतिहीन हो !

'भई, एक मर्द उसके सामने खड़ा था—मर्द, जिसकी निगाहें कपड़ों में भी औरत के जिस्म तक पहुंच जाती हैं और जो परमात्मा जाने खयाल ही खयाल में जाने कहां-कहां पहुंच जाता है। लेकिन वह जरा भी न घबराई और''''''और उसकी आँखें ऐसा समझ लो कि अभी लौंड्री से धुलकर आई हैं''''' उसको थोड़ी-सी लाज तो आनी चाहिए थी। जरा सी सुर्खी दोनों में पैदा होनी चाहिए थी। मान लिया, कस्बी थी, पर कस्बियां यों नंगी तो नहीं खड़ी हो जातीं।'

दस वर्ष उसे दल्लाली करते हो गए थे और इन दस वर्षों में वह पेशा कराने वाली लड़कियों के सारे भेदों से वाकिफ हो चुका था। मिसाल के तौर पर उसे यह मालूम था कि पायधोनी के आखिरी सिरे पर जो छोकरी एक नौजवान लड़के को भाई बना कर रहती है, इसलिए 'अछूत कन्या' का रिकार्ड 'काहे करता मूरख प्यार प्यार''''''' अपने टूटे हुए बाजे पर बजाया करती

है कि उसे अशोक कुमार से बुरी तरह से इश्क है। कई मनचले लौंडे अशोक कुमार से उसकी मुलाकात कराने का झाँसा देकर अपना उल्लू सीधा कर चुके थे। उसे यह भी मालूम था कि दादर में जो पंजाबिन रहती है, केवल इसलिए कोट-पतलून पहनती है कि उसके एक यार ने उससे कहा था कि तेरी टाँगें तो बिलकुल उस अंग्रेज ऐक्ट्रेस की तरह हैं जिसने 'मराको' उर्फ 'सूने-तमन्ना' में काम किया था। यह फिल्म उसने कई बार देखी और जब उसके यार ने कहा कि मार्लिन डिट्रेच इसलिए पतलून पहनती है कि उसकी टाँगें बहुत सुन्दर हैं और उसने उन टाँगों का दो लाख का बीमा करा रखा है तो उसने भी पतलून पहननी शुरू कर दी, जो उसके नितम्बों में फँसकर आती थी और उसे यह भी मालूम था कि मजगाँव वाली दक्षिणी छोकरी सिर्फ इसलिए कॉलिज के खूबसूरत लौंडों को फाँसती है कि उसे एक खूबसूरत बच्चे की माँ बनने का शौक है। उसको यह भी पता था कि वह कभी अपनी इच्छा पूरी न कर सकेगी, इसलिए कि वह बाँझ है, और उस काली मद्रासिन की बाबत, जो हर समय कानों में हीरे की बूटियाँ पहने रहती थी, उसे यह बात अच्छी तरह मालूम थी कि उसका रंग कभी सफेद नहीं होगा और वह उन दवाओं पर बेकार पैसा खर्च कर रही है जो वह आये दिन खरीदती रहती है।

उसको उन सभी छोकरियों का अन्दर-बाहर का हाल मालूम था जो उसके पेशे में शामिल थीं। मगर उसको यह पता न था कि एक दिन कान्ता कुमारी, जिसका असली नाम इतना कठिन था कि उसे वह उम्र भर याद नहीं कर सकता था, उसके सामने नंगी खड़ी हो जाएगी और उसको जिन्दगी के सबसे बड़े ताज्जुब में डाल देगी।

सोचते-सोचते उसके मुँह में पान की पीक इतनी इकट्ठी हो गई थी कि अब वह मुश्किल से छालियों के उन नन्हें-नन्हें रेजों को चबा सकता था जो उसके दाँतों की रीखों में से इधर-उधर फिसलकर निकल जाते थे। उसके तंग माथे पर पसीने की नन्हीं-नन्हीं बूँदें उभर आईं जैसे मलमल में पनीर को धीरे से दबा दिया गया हो.........उसके पुरुषत्व को धक्का-सा पहुंचता

था जब वह कान्ता के नंगे जिस्म को अपनी कल्पना में देखता था। उसे महसूस होता था जैसे उसका अपमान हुआ है।

एक दम उसने अपने मन में कहा, 'भई यह अपमान नहीं है तो क्या है? यानी एक छोकरी नंग-धड़ंग तुम्हारे सामने खड़ी हो जाती है ''''! तुम खुशिया ही तो हो'''''' खुशिया न हुआ साला वह बिल्ला हो गया जो उसके बिस्तर पर हर समय ऊँघता रहता है'' और क्या!'

अब उसे विश्वास हो गया कि सचमुच उसका अपमान हुआ है। वह मर्द था और उसको इस बात की अज्ञात रूप से आशा थी कि औरतें चाहे शरीफ हों, चाहे बाजारू उसको मर्द ही समझेंगी और उसके साथ अपने बीच वह पर्दा कायम रखेंगी जो एक मुद्दत से चला आ रहा है। वह तो सिर्फ यह पता लगाने के लिए कान्ता के यहां गया था कि वह कब तक मकान बदल रही है और कहां जा रही है? कान्ता के पास उसका जाना बिल्कुल व्यापार से सम्बन्धित था। अगर खुशिया कान्ता के बारे में सोचता कि जब वह उसका दरवाजा खट-खटायेगा तो वह अन्दर क्या कर रही होगी तो उसकी कल्पना में अधिक-से-अधिक इतनी ही बातें आ सकती थीं।

—सिर पर पट्टी बाँधे लेट रही होगी।

—बिल्ले के बालों से पिस्सू निकाल रही होगी।

—उस बाल-सफा पाउडर से अपनी बगलों के बाल उड़ा रही होगी जो इतनी बास मारता था कि खुशिया की नाक बर्दाश्त नहीं कर सकती थी।

—पलंग पर अकेली बैठी ताश फैलाये पेशेन्स खेलने में व्यस्त होगी।

बस इतनी चीजें थी, जो उसके दिमाग में आती थी। घर में वह किसी को रखती नहीं थी, इसलिए इस बात का ख्याल ही नहीं आ सकता था। पर खुशिया ने तो यह सोचा ही नहीं था। वह तो काम से वहाँ गया था कि अचानक कान्ता'' यानी कपड़े पहिनने वाली कान्ता, मतलब यह कि वह कान्ता जिसको वह हमेशा कपड़ों में देखा करता था, उसके सामने बिल्कुल नंगी खड़ी हो गई—बिल्कुल नंगी ही समझो, क्योंकि एक छोटा सा तौलिया सब कुछ तो छिपा नहीं सकता। खुशिया को वह दृश्य देख कर ऐसे महसूस हुआ था जैसे छिलका उसके

नि आ गिरा है—
हाथ में रह गया है और केले का गूदा फिसल कर उसके सामने नंगा हो गया है।
नहीं उसे कुछ और ही महसूस हुआ, था जैसे—वह स्वयं न होता। गुनिया
मगर बात यही तक ही समाप्त हो जाती तो कुछ भी मगर यहां मुसीबत
उसने आश्चर्य का किसी-न-किसी जैसे ने दूर कर दिया। '—'जब तुमने कहा
वह आ पड़ी थी कि उस कांता ने मुस्करा कर कहा 'भाई'—यह बात उसे
गुनिया है, तो मैंने सोचा, अपना गुनिया ही तो है, सामने
लाने का नहीं थी।
। जिस तरह कान्ता
'भाभी मुस्करा रही थी' यह बार-बार बड़बड़ाया जाकर आई थी। यह
नंगी थी, उस तरह उसकी मुस्कराहट गुनिया को नंगी नजर दिखाई दिया था
मुस्कराहट ही नहीं, उसे कान्ता का शरीर भी उस तरह न
जैसे उस पर रखा फिरा हुआ है।
पड़ोस की एक औरत
उसे बार-बार बचपन के वे दिन याद आ रहे थे जब ह बाल्टी पानी से भर
उससे कहा करती थी, गुनिया बेटा, जा दौड़कर जा, मा के बनाये हुए पर्दे के
ला। जब वह बाल्टी भर कर लाया करता था वह धोतीरख दे। मैंने मुँह पर
पीछे से कहा करती थी, अन्दर आकर यहां मेरे पास ोती का पर्दा हटा कर
साबुन मला हुआ है। मुझे कुछ सुझाई नहीं देता। वह धुंत की झाग मे लिपटी
बाल्टी उसके पास रख दिया करता था। उस समय साबुकिसी तरह की उथल-
हुई नंगी औरत उसे नजर आती थी, पर उसके मन मे
पुथल पैदा नहीं होती थी।
ला! बच्चे और मर्द
'भई मैं उस समय बच्चा था। बिल्कुल भोला-भाे। मगर अब तो मैं
में बहुत फर्क होता है। बच्चों से कौन पर्दा करता है और अट्ठाईस साल
पूरा मर्द हूं मेरी उम्र इस वक्त लगभग अट्ठाईस साल भी नंगी खड़ी नहीं
के जवान आदमी के सामने तो कोई बूढ़ी औरत
होगी।'
सारी बातें नहीं थीं
कान्ता ने उसे क्या समझा था? क्या उसमें वे ्हीं कि वह कान्ता को
जो एक नौजवान मर्द में होती हैं? इसमें कोई सन्देह ्किन चोर-दृष्टि से क्या
एकाएक नंग-धड़ंग देख कर बहुत घबरा गया था। दे

उसने कान्ता की उन चीजों का जायजा नहीं लिया था जो रोजाना इस्तेमाल के बावजूद असली हालत पर कायम थी और क्या आश्चर्य के साथ उसके दिमाग में यह सवाल आया था कि दस रुपये में कान्ता बिल्कुल महँगी नहीं और दशहरे के दिन बैंक का बाबू जो दो रुपये की रिआयत न मिलने पर वापस चला गया था, बिल्कुल गधा था? और इन सबके ऊपर क्या एक क्षण के लिए उसके सारे पुट्ठों में एक अजीब किस्म का तनाव नहीं पैदा हो गया था? और उसने एक ऐसी अंगड़ाई नहीं लेनी चाही थी, जिससे उसकी हड्डियां तक चटखने लगें...... फिर क्या कारण था कि मंगलौर की उस सांवली छोकरी ने उसको मर्द न समझा और सिर्फ... ...सिर्फ सुखिया समझ कर उसको अपना सब कुछ देखने दिया?

उसने गुस्से में आकर पान की गाढ़ी पीक थूक दी जिसने फुटपाथ पर कई बेल-बूटे बना दिये। पीक थूककर वह उठा और ट्राम में बैठकर अपने घर चला गया।

घर में उसने नहा-धोकर नई धोती पहनी। जिस बिल्डिंग में रहता था, उसकी एक दुकान में सेलून था। उसके अन्दर जाकर उसने आईने के सामने पहले बालों में कंघी की फिर एकाएक कुछ ख्याल आया। वह कुर्सी पर बैठ गया और बड़ी गम्भीरता से उसने दाढ़ी मूँडने के लिए नाई से कहा। आज चूँकि वह दूसरी बार दाढ़ी मुँडवा रहा था, इसलिए नाई ने कहा, 'अरे भई सुखिया भूल गये क्या? सुबह मैंने ही तो तुम्हारी दाढ़ी मूँडी थी।' इस पर सुखिया ने बड़ी गम्भीरता से दाढ़ी पर उल्टा हाथ फेरते हुए कहा, 'खूँटी अच्छी तरह नहीं निकली...... ...!'

अच्छी तरह खूँटी निकलवा कर और चेहरे पर पाउडर मलवा कर वह सेलून से बाहर निकला। सामने टैक्सियों का अड्डा था। बम्बई के खास अन्दाज में उसने 'शी..........शी' करके एक टैक्सी ड्राइवर को अपनी ओर आकर्षित किया और उँगली के इशारे से उसे टैक्सी लाने के लिए कहा।

जब वह टैक्सी में बैठ गया तो ड्राइवर ने घूमकर उससे पूछा—'कहाँ जाना है साहब?'

इन चार शब्दों ने और विशेष रूप से 'साहब' शब्द ने खुशिया को सचमुच खुश कर दिया। मुस्कराकर उसने बड़े दोस्ताना लहजे में जवाब दिया, 'बतायेंगे। पहले तुम आपेरा हाऊस की तरफ चलो—लैमिंग्टन रोड होते हुए ·········समझे?'

ड्राइवर ने मोटर की लाल झंडी का सिर नीचे दबा दिया। 'टन टन' हुई और टैक्सी ने लैमिंग्टन रोड का रुख किया। लैमिंग्टन रोड का जब आखिरी सिरा आ गया तो खुशिया ने ड्राइवर को आदेश दिया, 'बायें हाथ मोड़ लो!'

टैक्सी बायें हाथ मुड़ गई। अभी ड्राइवर ने गीयर भी न बदला था कि खुशिया ने कहा, 'यह सामने वाले खम्भे के पास रोक लेना जरा।'

ड्राइवर ने ठीक खम्भे के पास टैक्सी खड़ी कर दी। खुशिया दरवाजा खोलकर बाहर निकला और एक पान वाले की दुकान की ओर बढ़ा। यहाँ से उसने पान लिया और उस आदमी से जो कि दुकान के पास खड़ा था, चन्द बातें कीं और उसे अपने साथ टैक्सी पर बिठाकर ड्राइवर से बोला, 'सीधे ले चलो!'

देर तक टैक्सी चलती रही। खुशिया ने जिधर इशारा किया, ड्राइवर ने उधर स्टीयरिंग फिरा दिया। रौनक वाले कई बाजारों से होते हुए टैक्सी एक गली में दाखिल हुई, जिसमें धुँधली-सी रोशनी थी और बहुत कम लोग आ-जा रहे थे। कुछ लोग सड़क पर बिस्तर जमाए लेटे थे। उनमें से कुछ बड़े इत्मीनान से चम्पी करा रहे थे। जब टैक्सी उन चम्पी कराने वालों से आगे निकल गई और एक काठ के बंगले-नुमा मकान के पास पहुंची तो खुशिया ने ड्राइवर को ठहरने के लिए कहा, 'बस, यहाँ रुक जाओ!'

टैक्सी ठहर गई तो खुशिया ने उस आदमी से, जिसको वह पान वाले की दुकान से अपने साथ लाया था, कहा 'जाओ—मैं यहाँ इन्तजार करता हूं।'

वह आदमी मूर्खों की तरह खुशिया की ओर देखता हुआ, टैक्सी से बाहर निकला और सामने वाले लकड़ी के मकान में घुस गया।

खुशिया जमकर टैक्सी के गद्दे पर बैठ गया। एक टाँग दूसरी टाँग पर रखकर उसने जेब से बीड़ी निकालकर सुलगाई और एक-दो कश लेकर बाहर

सड़क पर फेंक दी। वह अब बड़ा बेचैन था, इसलिए उसे लगा कि टैक्सी का एंजिन बन्द नहीं हुआ। उसके सीने में चूंकि फड़फड़ाहट-सी हो रही थी, इसलिए वह समझा कि ड्राइवर ने बिल बढ़ाने के लिए पैट्रोल छोड़ रखा है। अतः उसने तेजी से कहा—'यों बेकार एंजिन चालू रखकर तुम कितने पैसे और बढ़ा लोगे?'

ड्राइवर ने घूमकर खुशिया की ओर देखा और कहा, 'सेठ एंजिन तो बन्द है।'

जब खुशिया को अपनी गलती का एहसास हुआ तो उसकी बेचैनी और भी बढ़ गई और उसने कुछ कहने के बदले ओंठ चबाने शुरू कर दिए। फिर एकाएकी सिर पर वह किश्तीनुमा काली टोपी पहन कर, जो अब तक उसकी बगल में दबी हुई थी, उसने ड्राइवर का कंधा हिलाया और कहा, 'देखो, अभी एक छोकरी आएगी। जैसे ही अन्दर आए तुम मोटर चला देना ......समझे ?...... घबराने की कोई बात नहीं है, मामला ऐसा-वैसा नहीं है।'

इतने में सामने लकड़ी वाले मकान से दो आदमी बाहर निकले। आगे-आगे खुशिया का दोस्त था और उसके पीछे-पीछे कान्ता, जिसने शोख रंग की साड़ी पहिन रखी थी।

खुशिया झट से उस तरफ को सरक गया जिधर अंधेरा था। खुशिया के दोस्त ने टैक्सी का दरवाजा खोला और कान्ता को अंदर दाखिल करके दरवाजा बन्द कर दिया। उसी समय कान्ता की चकित आवाज सुनाई दी, जो चीख से मिलती-जुलती थी—'खुशिया तुम ?'

'हाँ मैं.........लेकिन तुम्हें रुपये मिल गए हैं न ?' खुशिया की मोटी आवाज बुलन्द हुई'''देखो ड्राइवर जूहू ले चलो।'

ड्राइवर ने सेल्फ दबाया। एंजिन फड़फड़ाने लगा। वह बात जो कान्ता ने कही, सुनाई न दे सकी। टैक्सी एक धचके के साथ आगे बढ़ी और खुशिया

के दोस्त को सड़क के बीच चकित-विस्मित छोड़ उस अर्ध-प्रकाशित गली में गायब हो गई ।

इसके बाद किसी ने खुशिया को मोटरों की दुकान के उस पत्थर के चबूतरे पर नहीं देखा ।

———

फ़ोभा बाई

हैदराबाद से शहाब आया तो उसने बम्बई सेण्ट्रल स्टेशन के प्लेटफार्म पर पहला कदम रखते ही हनीफ से कहा, 'देखो भई, आज शाम को वह मामला जरूर होगा। वरना याद रखो, मैं वापस चला जाऊँगा।'

हनीफ को मालूम था कि वह 'मामला' क्या है। अतएव शाम को उसने टैक्सी ली। शहाब को साथ लिया। ग्राण्ट रोड के नाके पर एक दल्लाल को बुलाया और उससे कहा, 'मेरे दोस्त हैदराबाद से आये हैं। इनके लिए छोकरी चाहिए।'

दल्लाल ने अपने कान से उड़सी हुई बीड़ी निकाली और उसको होंठों में दबाकर कहा, 'दकनी चलेगी?'

हनीफ ने शहाब की तरफ सवालिया नजरों से देखा। शहाब ने कहा, 'नहीं भाई, मुझे कोई मुसलमान चाहिए।'

'मुसलमान?' दल्लाल ने बीड़ी को चूसा—'चलिये!' और यह कहकर वह टैक्सी की अगली सीट पर बैठ गया। ड्राइवर से उसने कुछ कहा। टैक्सी स्टार्ट हुई और विभिन्न बाजारों से होती हुई फ़ोरजेट स्ट्रीट के साथ वाली गली में दाखिल हुई। यह गली एक पहाड़ी पर थी। बहुत ऊँचान थी। ड्राइवर ने गाड़ी को फर्स्ट गियर में डाला। हनीफ को ऐसा महसूस हुआ कि रास्ते में टैक्सी रुककर वापस चलना शुरू कर देगी। मगर ऐसा न हुआ। दल्लाल ने ड्राइवर को ऊँचान के ठीक आखिरी सिरे पर जहाँ चौक-सा बना था, रुकने के लिए कहा।

हनीफ कभी इस तरफ नहीं आया था। ऊँची पहाड़ी थी जिसके दायीं

तरफ एकदम ढलान थी। जिस बिल्डिंग में दल्लाल
दो मंजिलें थीं। हालांकि दूसरी ओर की बिल्डिंगें
थीं। हनीफ को बाद में मालूम हुआ कि ढलान के
तीन मंजिलें नीचे थीं जहां लिफ्ट जाती थी।

शहाब और हनीफ खामोश बैठे रहे, उन्होंने कोई
दल्लाल ने उस लड़की की बहुत प्रशंसा की थी जिसको
में गया था। उसने कहा था, 'वह बड़े अच्छे परिवार
तौर पर आपके लिए निकाल कर ला रहा हूं।'

दोनों सोच रहे थे, यह लड़की कैसी होगी जो
जा रही है।

थोड़ी देर के बाद दल्लाल प्रकट हुआ; वह अकेला
कहा, 'गाड़ी वापस करो।' और यह कहकर वह
गाड़ी एक चक्कर लेकर मुड़ी; तीन-चार बिल्डिंगें
से कहा, 'रोक लो।' फिर वह हनीफ से सम्बोधित हु
रही थी, कैसे आदमी हैं। मैंने कहा, 'नम्बर वन।'

दस-पन्द्रह मिनट के बाद टैक्सी का दरवाजा
के साथ बैठ गई। रात का समय था, गली में
हनीफ दोनों उसे अच्छी तरह न देख सके। सीट
'चलो।'

टैक्सी तेजी से उतरने लगी।

हनीफ के पास कोई जगह नहीं थी, जहां कोई
जैसा तै पाया था, वे डाक्टर खान साहब पास
हास्पिटल में नियुक्त था। उसे वहीं दो कमरे मिले
आते ही उसे फोन कर दिया था कि वह हनीफ के
आयेगा और 'मामला' साथ होगा। चुनांचे टैक्सी
दल्लाल सौ रुपये लेकर ग्राण्ट रोड पर उतर गया।

रास्ते में भी शहाब और हनीफ उस स्त्री को

कोई विशेष बातचीत भी न हुई । जब उसने अपने ठेठ हैदराबादी लहजे मे पूछा, 'आपका उस्मे गरामी (शुभ नाम) ?' तो स्त्री ने उत्तर दिया, 'फोभा बाई ।'

'फोभा बाई ?' हनीफ सोचता रह गया कि यह कैसा नाम है ।'

डाक्टर खान उनकी प्रतीक्षा कर रहा था । सबसे पहले शहाब कमरे मे प्रविष्ट हुआ, दोनो गले मिले और एक-दूसरे को खूब गालियाँ दी ।

डाक्टर खान ने जब एक जवान औरत को दरवाजे में देखा तो एकदम खामोश हो गया । 'आइये, आइये !' उसने अपने सीने पर हाथ रखा । डाक्टर खान आप ?' उसने शहाब की ओर देखा ।

शहाब ने उस स्त्री की ओर दृष्टि डाली । स्त्री ने कहा, 'फोभा बाई ।'

डाक्टर खान ने बढ़कर उससे हाथ मिलाया, आपसे मिलकर बहुत खुशी हुई । फोभा बाई मुस्कराई, 'मुझे भी खुफी हुई ।'

शहाब और हनीफ ने एक-दूसरे की ओर देखा । डा० खान ने दरवाजा बन्द कर दिया और अपने मित्रों से कहा, 'आप दूसरे कमरे मे चले जाइये, मुझे कुछ काम करना है ।'

शहाब ने जब फोभा बाई से कहा, 'चलिये ।' तो उसने डाक्टर खान का हाथ पकड लिया, 'नही आप भी तफरीफ लाइये ।'

'आप तशरीफ ले चलिये, मैं आता हूं ।' यह कहकर डाक्टर खान ने अपना हाथ छुड़ा लिया ।'

शहाब और हनीफ फोभा बाई को अन्दर ले गये । थोड़ी देर बातचीत हुई तो उन्हें मालूम हुआ कि उसकी जुबान मोटी थी, वह 'श' और स' नही उच्चार सकती थी; उसके बदले उसके मुँह से 'फ' निकलता था । इस प्रकार उसका नाम शोभा बाई था । लेकिन कुछ देर और बातें करने के पश्चात उनको पता चला कि शोभा उसका असली नाम नही था । वह मुसलमान थी; जयपुर उसका वतन था, जहाँ से वह चार वर्ष हुए भागकर बम्बई चली आई थी । इससे अधिक उसने अपने बारे मे न बताया ।

साधारण-सी मुखाकृति, आँखें बड़ी नही थी; नाक भी सुन्दर थी । ऊपरी

तरफ एकदम ढलान थी। जिस बिल्डिंग में दल्लाल दाखिल हुआ, उसकी केवल दो मंजिलें थीं। हालांकि दूसरी ओर की बिल्डिंगें सब-की-सब चार मंजिला थीं। हनीफ को बाद में मालूम हुआ कि ढलान के कारण उस बिल्डिंग की तीन मंजिलें नीचे थीं जहां लिफ्ट जाती थी।

शहाब और हनीफ खामोश बैठे रहे, उन्होंने कोई बात न की। रास्ते में दल्लाल ने उस लड़की की बहुत प्रशंसा की थी जिसको लाने वह उस बिल्डिंग में गया था। उसने कहा था, 'वह बड़े अच्छे परिवार की लड़की है। स्पेशल तौर पर आपके लिए निकाल कर ला रहा हूं।'

दोनों सोच रहे थे, यह लड़की कैसी होगी जो 'स्पेशल तौर पर' निकाली जा रही है।

थोड़ी देर के बाद दल्लाल प्रकट हुआ; वह अकेला था। ड्राइवर से उसने कहा, 'गाड़ी वापस करो।' और यह कहकर वह अगली सीट पर बैठ गया। गाड़ी एक चक्कर लेकर मुड़ी; तीन-चार बिल्डिंगें छोड़कर दल्लाल ने ड्राइवर से कहा, 'रोक लो।' फिर वह हनीफ से सम्बोधित हुआ, 'आ रही है। पूछ रही थी, कैसे आदमी हैं। मैंने कहा, 'नम्बर वन।'

दस-पन्द्रह मिनट के बाद टैक्सी का दरवाजा खुला और एक स्त्री हनीफ के साथ बैठ गई। रात का समय था, गली में प्रकाश कम था। शहाब और हनीफ दोनों उसे अच्छी तरह न देख सके। सीट पर बैठते ही उसने कहा, 'चलो।'

टैक्सी तेजी से उतरने लगी।

हनीफ के पास कोई जगह नहीं थी, जहाँ कोई 'मामला' हो सकता। अतः जैसा तै पाया था, वे डाक्टर खान साहब पास चले गये। वह मिलिटरी हास्पिटल में नियुक्त था। उसे वहीं दो कमरे मिले हुए थे। शहाब ने बम्बई आते ही उसे फोन कर दिया था कि वह हनीफ के साथ रात को उसके पास आयेगा और 'मामला' साथ होगा। चुनांचे टैक्सी मिलिटरी हस्पताल पहुंची। दल्लाल सौ रुपये लेकर ग्राण्ट रोड पर उतर गया।

रास्ते में भी शहाब और हनीफ उस स्त्री को भली प्रकार न देख सके;

कोई विशेष बातचीत भी न हुई । जब उसने अपने ठेठ हैदराबादी लहजे में पूछा, 'आपका उस्मे गरामी (शुभ नाम) ?' तो स्त्री ने उत्तर दिया, 'फोभा वाई ।'

'फोभा वाई ?' हनीफ सोचता रह गया कि यह कैसा नाम है ।'

डाक्टर खान उनकी प्रतीक्षा कर रहा था । सबसे पहले शहाब कमरे में प्रविष्ट हुआ; दोनों गले मिले और एक-दूसरे को खूब गालियाँ दीं ।

डाक्टर खान ने जब एक जवान औरत को दरवाजे में देखा तो एकदम खामोश हो गया । 'आइये, आइये !' उसने अपने सीने पर हाथ रखा । डाक्टर खान आप ?' उसने शहाब की ओर देखा ।

शहाब ने उस स्त्री की ओर दृष्टि डाली । स्त्री ने कहा, 'फोभा बाई ।'

डाक्टर खान ने बढ़कर उससे हाथ मिलाया, आपसे मिलकर बहुत खुशी हुई । फोभा वाई मुस्कराई, 'मुझे भी खुफी हुई ।'

शहाब और हनीफ ने एक-दूसरे की ओर देखा । डा० खान ने दरवाजा बन्द कर दिया और अपने मित्रों से कहा, 'आप दूसरे कमरे में चले जाइये; मुझे कुछ काम करना है ।'

शहाब ने जब फोभा वाई से कहा, 'चलिये ।' तो उसने डाक्टर खान का हाथ पकड़ लिया, 'नहीं आप भी तफरीफ लाइये ।'

'आप तशरीफ ले चलिये, मैं आता हूं ।' यह कहकर डाक्टर खान ने अपना हाथ छुड़ा लिया ।'

शहाब और हनीफ फोभा वाई को अन्दर ले गये । थोड़ी देर बातचीत हुई तो उन्हें मालूम हुआ कि उसकी जुबान मोटी थी, वह 'श' और स' नहीं उच्चार सकती थी; उसके बदले उसके मुँह से 'फ' निकलता था । इस प्रकार उसका नाम शोभा वाई था । लेकिन कुछ देर और बातें करने के पश्चात उनको पता चला कि शोभा उसका असली नाम नहीं था । वह मुसलमान थी; जयपुर उसका वतन था, जहाँ से वह चार वर्ष हुए भागकर बम्बई चली आई थी । इससे अधिक उसने अपने बारे में न बताया ।

साधारण-सी मुखाकृति, आँखें बड़ी नहीं थीं; नाक भी सुन्दर थी । ऊपरी

होंठ के ठीक बीच में एक छोटे-से जख्म का निशान था। जब वह बात करती थी तो यह निशान थोड़ा-सा फैल जाता था। गले में वह जड़ाऊ नेकलेस पहने हुए थी; दोनों हाथों में सोने की चूड़ियाँ थीं।

बहुत ही बातूनी स्त्री थी। बैठते ही उसने इधर-उधर की बातें शुरू कर दीं। हनीफ और शहाब केवल 'हूं-हां' करते रहे। फिर उसने उनके बारे में पूछना आरम्भ किया कि वे क्या करते हैं, कहां रहते हैं, क्या उम्र है, फादी-फुदा हैं या गैर-फादीफुदा। हनीफ इतना दुबला क्यों है, फहाब ने दो कृत्रिम दांत क्यों लगाये हैं। गोपन बोलता था तो उसका इलाज डा० खान से क्यों न कराया। फरमाता क्यों है, फेर क्यों नहीं गाता।

शहाब ने उसे कुछ शेर सुनाये। शोभा ने बड़े जोरों की दाद दी। जब शहाब ने यह शेर सुनाया :

'खेतों को दे लो पानी अब बह रही है गंगा,
कुछ कर लो नौजवानों उठती जवानियां हैं !'

तो शोभा उछल पड़ी। 'वाह जनाब शहाब वाह ! बहुत अच्छा फेर है। उठती जवानियाँ हैं, वाह वाह !'

इसके बाद शोभा ने अनगिनत शेर सुनाये—बिल्कुल बेजोड़, बेतुके। जिनका न सिर था न पैर। शेर सुनाकर उसने शहाब से कहा, 'फहाब फाहब, मजा आया आपको ?'

शहाब ने जवाब दिया, 'बहुत।'

शोभा ने शर्माकर कहा, 'ये फेर मेरे थे। मुझे फायरी का बहुत फौक है।'

शहाब और हनीफ दोनों ने एक-दूसरे की ओर देखा और मुस्करा दिये। इसके बाद सिर्फ एक सही शेर शोभा सुनाया :

'कभी तो मिरे दर्दे-दिल की खबर ले,
मिरे दर्द से आश्ना होने वाले।'

यह शेर हनीफ कई बार सुन चुका था और शायद पढ़ भी चुका था। लेकिन शोभा ने कहा, 'हनीफ फाहब, यह फेर भी मेरा है।'

हनीफ ने खूब प्रशंसा की, 'माशा अल्लाह आप तो कमाल करती हैं।

शोभा चौंकी ! 'माफ कीजियेगा, मेरी जुबान में तो कुछ खराबी है, लेकिन आपने क्यों माशा अल्लाह के बदले माशा अल्लाह कहा ?'

हनीफ और शहाब दोनों बड़े बेइख्तियार हंस पड़े। शोभा भी हँसने लगी। इतने में डाक्टर खान आ गया। उसने अन्दर प्रवेश करते ही शोभा से कहा, 'क्यों जनाब, इतनी हँसी किस बात पर आ रही है ?'

अधिक हँसने के कारण शोभा की आँखों में आंसू आ गये थे। उसने रूमाल से उनको पोंछा और डाक्टर खान से कहा, एक बात ऐसी हुई की हम हँस पड़े।'

डाक्टर खान ने भी हँसना शुरू कर दिया।

'शोभा ने उससे कहा, 'आइये, बैठिये। चारपाई की एक ओर सरक कर उसने डाक्टर खान का हाथ पकड़ा और उसे अपने पास बिठा लिया।

फिर शेरो शायरी शुरू हो गई। शोभा ने लम्बी-लम्बी चार बेतुकी गजलें सुनाईं। सबने दाद दी मगर शहाब उकता गया। वह 'मामला' चाहता था। हनीफ उसके बदले हुए तेवर देखकर भाँप गया, चुनांचे उसने शहाब से कहा, 'अच्छा भाई, मैं इजाजत चाहता हूं। इन्शा अल्लाह कल सुबह मुलाकात होगी।'

वह यह कहकर कुर्सी पर से उठा। लेकिन शोभा ने उसका हाथ पकड़ लिया, 'नहीं, आप नहीं जा सकते।'

'हनीफ ने उत्तर दिया, 'मैं माफी चाहता हूँ। मेरी बीवी इन्तेजार कर रही होगी।'

'ओह !···लेकिन नहीं। आप थोड़ी देर और जरूर बैठें। अभी तो सिर्फ ग्यारह बजे हैं। शोभा ने आग्रह किया।

शहाब ने एक जम्हाई ली, 'बहुत वक्त हो गया है।'

शोभा ने मुस्कराकर शहाब की ओर देखा, 'मैं सारी रात जागने वाली हूं।' शहाब का मनोविकार दूर हो गया।

हनीफ थोड़ी देर बैठा, फिर रुखसत ली और चला गया। दूसरे दिन सुबह

नौ बजे के करीब शहाब आया और रात की बात सुनाने लगा, 'अजीबो गरीब औरत थी यह शोभा बाई ! पेट पर बालिश्त भर का आपरेशन का निशान था। कहती थी कि वह एक लकड़ी वाले सेठ की रखेल थी। उसने एक फिल्म कम्पनी खोल दी थी; उसके चेकों पर दस्तखत शोभा ही के होते थे। मोटर थी जो अब तक मौजूद है; नौकर-चाकर थे। लकड़ी वाला सेठ उससे बेहद मुहब्बत करता था। उसके पेट का आपरेशन हुआ तो उसने एक हज़ार रुपये यतीमखाने को दिये।

हनीफ ने पूछा, 'यह लकड़ी वाला सेठ अब कहां है? '

शहाब ने जवाब दिया, दूसरी दुनियां में टाल खोले बैठा है।'

औरत खूब थी यह शोभा बाई। मैं दूसरे कमरे में सो गया तो वह डाक्टर खान के साथ लेट गई। सुबह पांच बजे खान ने उससे कहा कि अब तुम जाओ तो शोभा ने कहा 'अच्छा मैं जाती हूं। लेकिन ये मेरे जेवर तुम अपने पास रख लो। मैं अकेली इनके साथ बाहर नहीं निकलती।

हनीफ ने पूछा, 'डाक्टर ने जेवर रख लिये ?'

शहाब ने सिर हिलाया, 'हां ! पहले तो उसका खयाल था कि नकली हैं मगर दिन की रोशनी में जब उसने देखा तो असली थे।'

'और वह चली गई ?'

'हां चली गई। यह कहकर कि वह किसी रोज आकर अपने जेवर वापस ले जायगी।

'यह तुमने बड़े अचम्भे की बात सुनाई।'

'खुदा की कसम हकीकत है।' शहाब ने सिगरेट सुलगाया, 'इसीलिए तो मैंने कहा कि यह शोभा बाई अजीबो-गरीब औरत है।'

हनीफ ने पूछा, 'वैसे कैसी औरत थी ?'

शहाब झेंप-सा गया, 'भई, मुझे ऐसे मामलों का कुछ पता नहीं। यह तुम खान से पूछना; वह एक्सपर्ट है।'

शाम को दोनों खान से मिले। जेवर उसके पास सुरक्षित थे। शोभा लेने

नहीं आई थी। खान ने बताया, 'मेरा ख्याल है शोभा किसी दिमागी सदमे का शिकार है।'

शहाब ने पूछा, 'तुम्हारा मतलब है, पागल है?'

खान ने कहा, 'नहीं, पागल नहीं है। लेकिन उसका दिमाग यकीनन नार्मल नहीं। बेहद मुखलिस औरत है—एक लड़का है उसका जयपुर में। उसे बराबर दो सौ रुपये माहवार भेजती है। हर तीसरे महीने उससे मिलने जाती है। जयपुर पहुंचते ही बुर्का ओढ़ लेती है, वहाँ उसे पर्दा करना पड़ता है।

हनीफ ने कहा, 'यह तुमने कैसे समझा कि उसका दिमाग नार्मल नहीं।

खान ने जवाब दिया, 'भई, मेरा ख्याल है नार्मल औरत होती तो अपने डेढ़-दो हजार के जेवर एक अजनबी के पास क्यों छोड़ जाती? इसके अलावा उसे मॉर्फिया के इंजेक्शन लेने की आदत है।'

शहाब ने पूछा, 'नशा होता है एक किस्म का।'

खान ने जवाब दिया, 'बहुत ही खतरनाक किस्म का, शराब से भी बदतर।'

'उसकी आदत कैसे पड़ी उसे?' शहाब ने मेज पर से पेपर वेट उठाकर दवात पर रख दिया।

'आपरेशन हुआ तो बिगड़ गया। दर्द बहुत सख्त था। उसको कम करने के लिए डाक्टर मॉर्फिया के इंजेक्शन देते रहे लगभग दो महीने तक। बस आदत हो गई।' डाक्टर खान ने मॉर्फिया और उसके परिणामों पर एक भाषण सा देना शुरू कर दिया।

एक सप्ताह हो गया किन्तु शोभा न आई। शहाब वापिस हैदराबाद चला गया था। डाक्टर खान हनीफ के पास जेवर लेकर आया कि उसे दे आयें। दोनों ने ग्रँट रोड के नाके पर उस दल्लाल को बहुत तलाश किया जो शहाब और हनीफ को शोभा के मकान के पास ले गया था; मगर वह नहीं मिला। हनीफ को मालूम था कि गली कौन सी है। डाक्टर खान ने कहा, 'ठीक है, हम पता लगा लेंगे। ये जेवर मैं अपने पास नहीं रखना चाहता, चोरी हो गई तो क्या करूंगा? वह तो अजीब बेपरवाह औरत है।'

दोनों टैक्सी में वहां पहुंच गये। हनीफ ने डाक्टर खान को बिल्डिंग बता दी और कहा, 'मैं नहीं जाऊंगा भई, तुम तलाश करो उसे।'

डाक्टर खान अकेला उस बिल्डिंग में दाखिल हुआ। एक-दो आदमियों से पूछा मगर शोभा का कुछ पता नहीं चला। नीचे से लिफ्ट ऊपर को आई तो होटल का छोकरा प्यालियां उठाये बाहर निकला। खान ने उससे पूछा तो उसने बताया, 'सबसे निचली मंजिल के आखिरी फ्लैट पर चले जाओ।' लिफ्ट के जरिये खान नीचे पहुंचा; आखिरी फ्लैट की घंटी बजाई। थोड़ी देर के बाद एक बुढ़िया ने दरवाजा खोला। खान ने उससे पूछा, 'शोभा बाई हैं?'

बुढ़िया ने उत्तर दिया, 'हां हैं।'

खान ने कहा, 'जाओ उनसे कहो कि डाक्टर खान आये हैं।'

अन्दर से शोभा की आवाज आई, 'आइये, डाक्टर साहब आइये।'

डाक्टर खान अन्दर दाखिल हुआ। छोटा-सा ड्राइंग रूम था चमकीले फर्नीचर से भरा हुआ। फर्श पर कालीन बिछे हुए थे। बुढ़िया दूसरे कमरे में चली गई। फौरन ही शोभा की आवाज आई, 'डाक्टर साहब अन्दर आ जाइये, मैं बाहर नहीं आ सकती।'

डाक्टर खान दूसरे कमरे में प्रविष्ट हुआ। शोभा चादर ओढ़े लेटी थी। खान ने उससे पूछा, 'क्या बात है?'

शोभा मुस्कराई।' कुछ नहीं डाक्टर साहब, तेल-मालिश करा रही थी।

डाक्टर पलंग के पास कुर्सी पर बैठ गया। उसने जेब से रूमाल निकाला जिसमें जेवर बँधे थे; खोल कर उसे पंलग पर रख दिया। कब तक मैं तुम्हारे इन जेवरों की हिफाजत करता रहूंगा? तुम ऐसी आई कि उधर का रुख तक न किया?'

शोभा हंसी। 'मुझे बहुत काम थे। लेकिन आपने क्यों तकलीफ की? मैं खुद आकर ले आती।' फिर उसने बुढ़िया से कहा, 'चाय मंगाओ डाक्टर साहब के लिये।'

डाक्टर ने कहा, 'नहीं, मुझे अब जाना है।'

'कहाँ?'

'हस्पताल।'

'टैक्सी में आये हैं आप ?'

'हाँ।'

'बाहर खड़ी है ?'

डा० ने सर के इशारे से 'हाँ' कहा।

'तो आप चलिये, मैं आती हूं।' यह कहकर उसने जेवर तकिये के नीचे रख दिए और रूमाल डाक्टर खान को दे दिया। डा० खान हनीफ के पास पहुंचा तो उसने पूछा, 'मिल गई ?'

डाक्टर मुस्कराया, 'मिल गई, आ रही है।'

पन्द्रह-बीस मिनट के बाद शोभा ने तेजी से टैक्सी का दरवाजा खोला और अन्दर बैठ गई।

डा० खान के कमरे में देर तक फिजूल किस्म की शेरबाजी होती रही। संयोग-वियोग तथा प्रेम-मुहब्बत के असंख्य निम्नकोटि के शेर शोभा ने सुनाए और कहा वे सब उसके अपने शेर हैं। डा० खान और हनीफ ने खूब दाद दी। शोभा बहुत खुश हुई और कहने लगी, 'याकूब सेठ पटो मुझसे फेर सुना करते थे।

याकूब सेठ वह लकड़ी वाला सेठ था जिसने शोभा के लिए एक फिल्म कम्पनी खोली थी। डा० खान और हनीफ हँस पड़े; शोभा भी हँसने लगी।

डाक्टर खान और शोभा की दोस्ती हो गई। शुरू-शुरू में तो वह हफ्ते में दो बार आती थी। अब करीब-करीब रोज आने लगी। रात को आती, सुबह सवेरे चली जाती। शाम को नियमित रूप से मार्फिया का इंजेक्शन लेती। डाक्टर इंजेक्शन लगाने के पहले उसके बाजू पर सुन्न करने वाली दवा लगा देता था। यह ठंडी-ठंडी चीज उसे बहुत पसन्द थी।

तीन महीने बीते तो शोभा जयपुर जाने के लिए तैयार हुई। मोटर अपनी डाक्टर खान के हवाले कर दी कि वह उसका ध्यान रखे। डाक्टर उसे स्टेशन पर छोड़ने गया। देर तक गाड़ी में एक-दूसरे से बातें करते रहे। जब गाड़ी

चलने लगी तो शोभा ने एकदम डा० का हाथ पकड़कर कहा, मुझे क्यों एक-दम ऐसा लगा है कि कुछ होने वाला है ?'

डा० खान ने कहा, 'क्या होने वाला है ?'

शोभा के चेहरे से वहशत बरसने लगी, 'मालूम नहीं मेरा दिल बैठा जा रहा है।'

'डा० खान ने उसे दम-दिलासा दिया । गाड़ी चल दी; दूर तक शोभा का हाथ हिलता रहा ।

जयपुर से शोभा के दो पत्र आये जिनसे केवल इतना पता चला था कि वह सकुशल पहुंच गई है। जब वापस आयगी तो उसके लिए बहुत उपहार लायगी । उसके बाद एक कार्ड आया जिसमें लिखा था, 'मेरी अँधेरी जिन्दगी में सिर्फ एक दिया था वह कल खुदा ने बुझा दिया; भला हो उसका ।'

हनीफ ने ये शब्द पढ़े तो उसकी आंखों में आंसू आ गये । 'भला हो उसका!' में अपार संताप था ।

बहुत समय व्यतीत हो गया; शोभा का कोई खत न आया । पूरा एक वर्ष बीत गया । डा० खान को उसका कोई पता न चला । शोभा अपनी मोटर उसके हवाले कर गई थी । वह उस बिल्डिंग में गया जिसकी सबसे निचली मंजिल में वह रहा करती थी । फ्लैट पर कोई और ही कब्जा जमाये था एक एक दल्लाल किस्म का आदमी । डा० खान आखिर थक-हारकर खामोश हो गया । मोटर उसने एक गैरेज में रखवा दी ।

एक दिन हनीफ घबराया हुआ हस्पताल में आया; उसका चेहरा पीला था डा० खान को ड्यूटी से हटाकर वह एक तरफ ले गया और कहा, 'मैंने आज शोभा को देखा है !'

डा० खान ने हनीफ का बाजू पकड़ कर एकदम पूछा, 'कहाँ ?'

'चौपाटी पर ! मैं उसे बिल्कुल न पहचानता क्योंकि वह सिर्फ हड्डियों का ढांचा थी ।'

डा० खान खोखली आवाज में बोला, 'हड्डियों का ढांचा ?'

हनीफ ने ठंडी आह भरी - 'शोभा नहीं थी, उसकी छाया थी। आँखें अंदर को धँसी हुईं, बाल बिखरे और धूल भरे; यों चलती थी कि जैसे अपने आपको घसीट रही है। मेरे पास आई और कहा, 'मुझे पाँच रुपये दो।' मैंने उसे न पहचाना। पूछा, 'क्या करोगी पाँच रुपये लेकर?' बोली, 'मार्फिया का टीका लूँगी।' एकदम मैंने गौर से उसकी तरफ देखा—उसके ऊपरी होंठ पर ज़ख्म का निशान मौजूद था। मैं चिल्लाया, 'शोभा!' उसने थकी हुई वीरान आँखों से मुझे देखा और पूछा, 'कौन हो तुम?' मैंने कहा, 'हनीफ!' उसने जवाब दिया, 'मैं किसी हनीफ को नहीं जानती।' मैंने तुम्हारा ज़िक्र किया कि तुमने उसे बहुत तलाश किया, बहुत ढूँढा। यह सुनकर उसके होंठों पर हल्की-सी मुस्कराहट पैदा हुई—और कहने लगी, उससे कहना मत ढूँढे मुझे। मेरी तरफ देखो मैं इतनी मुद्दत से अपना खोया हुआ लाल ढूँढती फिर रही हूँ; यह ढूँढना बिल्कुल बेकार है। कुछ नहीं मिलता। लाओ पाँच रुपये दो मुझे। मैंने उसे पाँच रुपये दिये और कहा, 'अपनी मोटर तो ले जाओ डा० खान से।' वह कहकहे लगाती हुई चली गई।

खान ने पूछा, 'कहाँ?'

हनीफ ने जवाब दिया, 'मालूम नहीं; किसी डा० के पास गई होगी।'

डा० खान ने बहुत तलाश किया मगर शोभा का कुछ पता न चला।

बादशाहत का ख़ात्मा

टेलिफोन की घण्टी बजी। मनमोहन पास ही मे बैठा था। उसने रिसीवर उठाया और कहा, 'हलो, फ़ौर फोर फोर फाइव वन।' दूसरी ओर से स्त्री की पतली-सी आवाज आई, 'सारी, राँग नबर।' मनमोहन ने रिसीवर रख दिया और किताब पढ़ने मे निमग्न हो गया। यह किताब वह लगभग बीस बार पढ चुका था, इसलिए नही कि उसमे कोई विशेष बात थी बल्कि दफ्तर मे, जो वीरान पड़ा था, एक सिर्फ़ यही किताब थी जिसके अंतिम पन्ने कीड़े खा गये थे।

एक हफ्ते से दफ्तर पर मनमोहन का आधिपत्य था क्योंकि उसका मालिक जो कि उसका दोस्त था कुछ रुपया कर्ज लेने के लिए कहीं बाहर गया हुआ था। मनमोहन के पास चूँकि रहने के लिए कोई जगह नहीं थी। इसलिए फुटपाथ से अस्थायी रूप मे वह इस दफ्तर मे आ गया था और इस एक सप्ताह मे वह दफ्तर की इकलौती किताब लगभग बीस बार पढ चुका था।

दफ्तर मे वह अकेला पड़ा रहता; नौकरी से उसे नफरत थी। अगर वह चाहता तो किसी भी फिल्म कम्पनी मे फिल्म डायरेक्टर के रूप मे नौकर हो सकता था, किन्तु वह गुलामी नहीं चाहता था। अत्यन्त निरीह तथा सहृदय व्यक्ति था; यार-दोस्त उसके दैनिक खर्च का प्रबन्ध कर देते थे। यह खर्च बहुत ही कम था : सुबह को चाय की प्याली और दो टोस्ट; दोपहर को दो फुल्के और थोड़ी-सी तरकारी, सारे दिन मे एक पैकेट सिगरेट और बस।

मनमोहन का कोई सम्बन्धी या नाती नहीं था। वह नितान्त शांतिप्रिय तथा निर्जनता का वातावरण पसद करता था, था बड़ा साहसी तथा विपदाएँ

सहने वाला—कई दिन तक भूखा रह सकता था उसके बारे में उसके मित्र और तो कुछ नहीं पर इतना अवश्य जानते थे कि वह बचपन ही से घर-बार छोड़ कर निकल आया था और एक मुद्दत से बम्बई के फुट-पाथों पर आबाद था। जीवन में उसे केवल एक अभिलाषा थी : स्त्री से प्रेम करने की। वह कहा करता था यदि मुझे किसी स्त्री का प्रेम प्राप्त हो गया तो मेरी सारी जिन्दगी बदल जायगी।

मित्रगण उससे कहते, 'तुम काम फिर भी न करोगे।

मनमोहन आह भर कर जवाब देता, 'काम? मैं मुजस्सम काम बन जाऊँगा।

दोस्त कहते, तो शुरू कर दो किसी से इश्क।'

मनमोहन जवाब देता, 'नहीं, मैं ऐसे इश्क का कायल नहीं जो मर्द की तरफ से शुरू हो।'

दोपहर के खाने का समय निकट आ रहा था। मनमोहन ने सामने दीवार पर क्लाक की ओर देखा; टेलीफोन की घण्टी बजनी शुरू हुई। उसने रिसीवर उठाया और कहा, 'फोर फोर फोर फाइव सेवन।'

'दूसरी ओर से पतली-सी आवाज आई, 'फोर फोर फोर फाइव सेवन?'

मनमोहन ने जवाब दिया, 'जी हां।'

'स्त्री की आवाज ने पूछा आप कौन हैं?'

'मैं मनमोहन, फरमाइये!'

दूसरी तरफ से आवाज आई तो मनमोहन ने कहा, 'फरमाइये किससे बात करना चाहती हैं आप?'

आवाज ने जवाब दिया, 'आपसे।'

मनमोहन ने कुछ चकित हो पूछा, 'मुझसे?'

'जी हां, आपसे। क्यों आपको कोई आपत्ति है?'

'मनमोहन सटपटा-सा गया, 'जी? जी नहीं।'

आवाज मुस्कराई, 'आपने अपना नाम मदन मोहन बताया था?'

'जी नहीं, मनमोहन।'

'मनमोहन !'

कुछ क्षण शान्ति में बीत गये तो मनमोहन ने कहा, आप बातें करना चाहती थीं मुझसे ?'

आवाज आई, 'जी हां ।'

'तो कीजिए ।'

'कुछ अवकाश के बाद आवाज आई, समझ में नहीं आता क्या बात करूं ? आप ही शुरू कीजिए ना कोई बात ।'

'बहुत बेहतर !' यह कहकर मनमोहन ने थोड़ी देर सोचा ।'

'नाम अपना बता चुका हूं; अस्थायी रूप से ठिकाना मेरा यह दफ्तर है । पहले फुटपाथ पर सोता था अब एक सप्ताह से इस आफिस की बड़ी मेज पर सोता हूं ।'

आवाज मुस्कराई, 'फुटपाथ पर आप मसहरी लगाकर सोते थे ?'

मनमोहन हँसा, 'इससे पहले कि मैं आपसे बातचीत करूं मैं यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि मैंने कभी झूठ नहीं बोला । फुटपाथ पर सोते मुझे एक जमाना हो गया है, यह दफ्तर लगभग एक हफ्ते से मेरे कब्जे में है । आजकल ऐश कर रहा हूं ।

आवाज मुस्कराई, 'कैसे एश ?'

मनमोहन ने जवाब दिया, 'एक किताब मिल गई थी यहीं से । अन्तिम पन्ने गुम हैं लेकिन मैं इसे बीस बार पढ़ चुका हूं । पूरी किताब कभी हाथ लगी तो मालूम होगा कि हीरो-हीरोइन के प्रेम का परिणाम क्या हुआ ।'

'आवाज हँसी, आप बड़े दिलचस्प आदमी हैं ।'

'मनमोहन ने बड़े तकल्लुफ से कहा, 'आपकी कृपा है ।'

आवाज ने कुछ सकोच के बाद पूछा, आपके मनोरंजन का साधन क्या है ?'

'मनोरंजन ?'

'मेरा मतलब है आप करते क्या हैं ?'

ारता हूं ? कुछ भी नहीं। एक बेकार इन्सान क्या कर सकता है ? ावारागर्दी करता हूं; रात को सो जाता हूं।'

। ने पूछा, यह जीवन आपको अच्छा लगता है ?'

न सोचने लगा, ठहरिए ! बात दरअसल यह है कि मैंने इस पर हीं किया अब आपने पूछा है तो मैं अपने आपसे मालूम कर रहा हूं दगी तुम्हें अच्छी लगती है या नहीं ?'

जवाब मिला ?'

अवकाश के पश्चात मनमोहन ने जवाब दिया, 'जी नहीं। लेकिन है कि ऐसी जिन्दगी मुझे अच्छी लगती ही होगी जबकि एक वर्ष ार रहा हूं।'

ज हँसी तो मनमोहन ने कहा, 'आपकी हँसी बड़ी सुरीली है।'

ज शरमा गई, शुक्रिया ! और बातचीत का सिलसिला बंद हो

ोहन थोड़ी देर रिसीवर हाथ में लिये खड़ा रहा। फिर मुस्कराकर दिया और दफ्तर बन्द करके चला गया।

दिन सुबह आठ बजे जबकि मनमोहन दफ्तर की बड़ी मेज पर सो लीफोन की घण्टी बजनी शुरू हुई। जँभाइयाँ लेते हुए उसने रिसीवर ौर कहा, 'हलो, फोर फोर फोर फाइव सेवन।'

री ओर से आवाज आई, 'आदाब अर्ज मनमोहन साहब।'

दाब अर्ज !' मनमोहन एकदम चौंका, ओह आप ! आदाब अर्ज, त !'

वाज आई, आप शायद सो रहे थे ?'

हाँ। यहाँ आकर मेरी आदतें कुछ बिगड़ रही हैं। वापस फुटपाथ पर बड़ी मुसीबत हो जायगी।'

वाज मुस्कराई, 'क्यों ?'

हाँ सुबह पाँच बजे से पहले-पहले उठना पड़ता है।'

आवाज हँसी। मनमोहनने पूछा 'कल आपने एकदम टेलीफोन बन्द कर दिया।'

आवाज शरमाई, 'आपने मेरी हँसी की प्रशंसा क्यों की थी?'

मनमोहन ने कहा, लो साहब, यह भी अजीब बात कही आपने! कोई चीज खूबसूरत हो तो उसकी तारीफ नहीं करनी चाहिए?'

'बिल्कुल नहीं।'

'यह शर्त आप मुझ पर नहीं लगा सकती। मैंने आज तक कोई शर्त अपने ऊपर नहीं लागू होने दी। आप हँसेंगी तो मैं जरूर तारीफ करूँगा।'

'मैं टेलीफोन बन्द कर दूँगी।'

'बड़े शौक से।'

'आपको मेरी नाराजगी का कोई ख्याल नहीं।'

'मैं सबसे पहले अपने आपको नाराज नहीं करना चाहता। अगर मैं आपकी हँसी की प्रशंसा न करूँ तो मेरी रुचि मुझसे नाराज हो जायगी और मेरी यह रुची मुझे बहुत प्रिय है।'

थोड़ी देर खामोशी रही। इसके बाद दूसरे सिरे से आवाज आई, 'क्षमा कीजिएगा, मैं अपनी नौकरानी से कुछ कह रही थी। हाँ तो आपकी रुचि आपको बहुत प्रिय है'''हाँ यह तो बताइए आपको शौक किस चीज का है?'

'क्या मतलब?'

'यानी कोई अभीष्ट ''''''कोई काम''' ''मेरा मतलब है आपको आता क्या है?'

मनमोहन हँसा, 'कोई काम नहीं आता; फोटोग्राफी का थोड़ा-सा शौक है।'

'बहुत अच्छा शौक है।'

'इसकी अच्छाई या बुराई के बारे में मैंने कभी नहीं सोचा।'

आवाज ने पूछा, 'कैमरा तो आपके यहाँ बहुत अच्छा होगा?'

मनमोहन हँसा, मेरे पास अपना कोई कैमरा नहीं। दोस्तों से माँग कर

शौक पूरा कर लेता हूं। अगर मैंने कभी कुछ कमाया तो एक कैमरा मेरी नजर में है, वह खरीदूंगा।'

आवाज ने पूछा, कौन-सा कैमरा ?'

मनमोहन ने जवाब दिया, एग्जेक्टा रिफ्लेक्स कैमरा मुझे बहुत पसन्द है।'

थोड़ी देर खामोशी रही; उसके बाद आवाज आई, मैं कुछ सोच रही थी।'

'क्या ?'

आपने न तो मेरा नाम पूछा, 'न टेलीफोन नम्बर मालूम किया।'

'मुझे इसकी आवश्यकता ही न पड़ी।'

'क्यों ?'

'नाम आपका कुछ ही हो क्या फर्क पड़ता है। आपको मेरा नाम नम्बर मालूम है, बस ठीक है। आप अगर चाहोगी कि मैं आपको फोन करूं तो नाम और नम्बर बता दीजिएगा।'

'मैं नहीं बताऊंगी।'

'लो साहब, यह भी खूब रहा मैं जब आपसे पूछूंगा ही नहीं तो बताने न बताने का सवाल ही कहाँ पैदा होता है ?'

आवाज मुस्कराई, 'आप अजीबो-गरीब आदमी हैं।'

मनमोहन मुस्काया, 'जी हाँ, कुछ ऐसा ही आदमी हूं।'

चन्द सेकण्ड खामोशी रही, 'आप फिर कुछ सोचने लगीं ?'

'जी हाँ, कोई और बात इस वक्त सूझ नहीं रही थी।'

'तो फोन बन्द कर दीजिए, फिर सही।'

आवाज कुछ तीखी हो गई, 'आप बहुत रूखे आदमी हैं। टेलीफोन बन्द कर दीजिए—लीजिए मैं बन्द करती हूं।'

मनमोहन ने रिसीवर रख दिया और मुस्कराने लगा।

आध घण्टे के बाद जब मनमोहन हाथ-मुंह धोकर कपड़े पहन कर बाहर निकलने के लिए तैयार हुआ तो टेलीफोन की घण्टी बजी। उसने रिसीवर ... और कहा, फोर फोर फोर फाइव सेवन।'

आवाज आई, 'मिस्टर मनमोहन।'

मनमोहन ने जवाब दिया, 'जी हाँ, मनमोहन। फरमाइए।'

आवाज मुस्काई, 'फरमाना यह है कि मेरी नाराजगी दूर हो गई है।'

मनमोहन ने बड़ी विनम्रता से कहा, 'मुझे बड़ी खुशी हुई है।'

'नाश्ता करते हुए मुझे खयाल आया कि आपके साथ बिगाड़ना नहीं चाहिए। हाँ आपने नाश्ता कर लिया?'

'जी नहीं, बाहर निकलने ही वाला था कि आपने टेलिफोन किया।'

'ओह, तो आप जाइए।'

'जी नहीं, मुझे कोई जल्दी नहीं। मेरे पास पैसे नहीं हैं इसलिए मेरा खयाल है कि आज नाश्ता नहीं होगा।'

'आपकी बातें सुनकर''' आप ऐसी बातें क्यों करते हैं! मेरा मतलब है ऐसी बातें आप इसलिए करते हैं कि आपको दुःख होता है?'

मनमोहन ने क्षण भर सोचा, 'जी नहीं मेरा यदि कोई दुःख दर्द है तो मैं उसका आदी हो चुका हूँ।'

'आवाज ने पूछा', 'मैं कुछ रुपये आपको भेज दूँ?'

मनमोहन ने जवाब दिया, 'भेज दीजिए, मेरे फिलासफरों में एक आपकी भी वृद्धि हो जायगी।'

'नहीं मैं नहीं भेजूँगी।'

'आपकी मर्जी।'

'मैं टेलिफोन बन्द करती हूँ।'

'अच्छा।'

मनमोहन ने रिसीवर रख दिया और मुस्कराता हुआ दफ्तर से निकल गया। रात को दस बजे के करीब वापस आया और कपड़े बदल कर मेज पर लेट कर सोचने लगा कि यह कौन है जो उसे फोन करती है। आवाज से केवल इतना पता चलता था कि जवान है; हँसी बहुत सुरीली है, बातचीत से यह साफ जाहिर है कि शिक्षित-सुसंस्कृत है। बहुत देर तक वह उसके बारे में

सोचता रहा। इधर क्लाक ने ग्यारह बजाये, उधर टेलिफोन की घण्टी बजी। मनमनोहन ने रिसीवर उठाया, 'हलो !'

दूसरे सिरे से आवाज आई, 'मिस्टर मनमोहन ?'

'जी हां, मनमोहन। फरमाइये।'

'फरमाना यह है कि मैंने आज दिन में कई बार रिंग किया, आप कहां गायब थे ?'

'साहब, बेकार हूं लेकिन फिर भी काम पर जाता हूं।'

'किस काम पर ?'

'आवारा गर्दी।'

'वापस कब आये ?'

'दस बजे।'

'अब क्या कर रहे थे ?'

'मेज पर लेटा आपकी आवाज से आपकी तस्वीर बना रहा था।'

'बनी ?'

'जी नहीं।'

'बनाने की कोशिश न कीजिए। मैं बड़ी बदसूरत हूं।'

'माफ कीजिएगा, अगर आप वास्तव में बदसूरत हैं तो टेलिफोन बन्द कर दीजिए। बदसूरत से मुझे नफरत है।'

'आवाज मुस्कराई, 'ऐसा है तो चलिए मैं खूबसूरत हूं। मैं आपके दिल में नफरत पैदा नहीं करना चाहती।'

'थोड़ी देर खामोशी रही। मनमोहन ने पूछा, 'कुछ सोचने लगी ?'

आवाज चौंकी, 'जी नहीं, मैं आपसे पूछने वाली थी कि·······

'सोच लीजिए अच्छी तरह।'

'आवाज हँस पड़ी, 'आपको गाना सुनाऊँ ?'

'जरूर।'

'ठहरिए।'

गला साफ करने की आवाज आई; फिर 'गालिब' की यह गजल शुरू हुई :

नुक्ता चीं है गमे दिल……

सहगल वाली नई धुन थी; आवाज में दर्द और निष्ठा थी। जब गजल खत्म हुई तो मनमोहन ने दाद दी, 'बहुत खूब ! जिन्दा रहो !'

दफ्तर की बड़ी मेज पर मनमोहन के दिल व दिमाग में सारी रात 'गालिब' की गजल गूँजती रही। सुबह जल्दी उठा और टेलिफोन का इन्तजार करने लगा। लगभग ढाई घण्टे कुर्सी पर बैठा रहा, पर टेलिफोन की घण्टी न बजी। जब निराश हो गया तो उसने एक विचित्र कटुता अपने कण्ठ में अनुभव की; उठ कर टहलने लगा। उसके बाद मेज पर लेट गया और कुढ़ने लगा। वही किताब जिसे अनेक बार वह पढ़ चुका था उठाई और पढ़ना शुरू कर दिया। यों ही लेटे लेटे शाम हो गई। करीब सात बजे टेलिफोन की घण्टी बजी। मनमोहन ने रिसीवर उठाया और तेजी से पूछा, 'कौन है ?'

वही आवाज आई, 'मैं !'

मनमोहन का स्वर कुछ कटु था, 'इतनी देर से तुम कहाँ थी ?'

आवाज लरजी, 'क्यों ?'

'मैं सुबह से यहाँ झक मार रहा हूँ, न नाश्ता किया है न दोपहर का खाना खाया है। जब कि पैसे मेरे पास मौजूद थे।'

आवाज आई, 'मेरी जब मर्जी होगी टेलिफोन करूँगी।…आप…'

मनमोहन ने बात काट कर कहा, 'देखो जी, यह सिलसिला बन्द करो। टेलिफोन करना है तो एक समय निश्चित करो। मुझसे प्रतीक्षा नहीं की जाती।'

आवाज मुस्कराई, 'आज की माफी चाहती हूँ, कल से नियमित रूप से सुबह-शाम फोन आया करेगा आपको।'

'यह ठीक है।'

आवाज हँसी, 'मुझे मालूम नहीं था, आप ऐसे बिगड़े दिल हैं।'

मनमोहन मुस्कराया, 'माफ करना इन्तेजार से मुझे बहुत-बहुत कोफ्त होती है और जब मुझे किसी बात से कोफ्त होती है तो अपने आपको सजा देना शुरू कर देता हूँ।'

वह कैसे ?'

'सुबह तुम्हारा टेलिफोन न आया, चाहिए तो यह था कि मैं चला जाता, लेकिन बैठा दिन भर अन्दर-ही-अन्दर कुढ़ता रहा; बचपना है साफ !'

आवाज हमदर्दी में डूब गई, 'काश मुझसे यह गलती न होती ! मैंने जान-बूझकर सुबह फ़ोन न किया।'

'क्यों ?'

'यह जानने के लिए कि आप इन्तेजार करेंगे या नहीं।'

मनमोहन हँसा, 'बहुत चंचल हो तुम। अच्छा अब फ़ोन बन्द करो, मैं खाना खाने जा रहा हूँ।'

'बेहतर, कब तक लौटियेगा ?'

'आधे घण्टे तक।'

मनमोहन आधा घण्टे के बाद खाना खाकर लौटा तो उसने फ़ोन किया। देर तक दोनों बातें करते रहे। इसके बाद उसने 'ग़ालिब' की ग़ज़ल सुनाई। मनमोहन ने दिल से दाद दी। फिर टेलीफ़ोन का सिलसिला बन्द हो गया।

अब हर रोज सुबह व शाम मनमोहन के पास उसका टेलिफ़ोन आता। घण्टी की आवाज सुनते ही वह टेलिफोन की ओर लपकता। कभी-कभी बातें घण्टों जारी रहतीं, इस दौरान में मनमोहन ने न तो उससे टेलीफोन नम्बर पूछा न उसका नाम। शुरू-शुरू में तो उसने उसकी आवाज़ की मदद से कल्पना के पर्दे पर उसका चित्र बनाने का यत्न किया था, परन्तु अब तो जैसे वह आवाज ही से सन्तुष्ट हो गया था; आवाज ही शक्ल थी, आवाज ही सूरत थी, आवाज ही जिस्म था, आवाज ही आत्मा थी। एक दिन उसने , 'मोहन, तुम मेरा नाम क्यों नहीं पूछते ?'

मनमोहन ने मुस्करा कर कहा, 'तुम्हारा नाम, तुम्हारी आवाज है, जो बहुत सुरीली है।'

'इसमें क्या शक है ?'

एक दिन वह बड़ा टेढ़ा सवाल कर बैठी, 'मोहन, तुमने कभी किसी लड़की से प्रेम किया है ?'

मनमोहन ने जवाब दिया, 'नहीं।'

'क्यों ?'

मोहन एकदम उदास हो गया, 'इस 'क्यों' का उत्तर कुछ शब्दों में नहीं दे सकता; मुझे अपने जीवन का सारा मलबा उठाना पड़ेगा और अगर कोई उत्तर न मिले तो बड़ा कष्ट होगा।'

'जाने दीजिए !'

टेलिफोन का सम्बन्ध स्थापित हुए लगभग एक महीना हो गया। दिन में दो बार निश्चित रूप से उसका फ़ोन आता। मनमोहन के पास अपने दोस्त का खत आया कि कर्जे का बन्दबस्त हो गया है। सात-आठ रोज में वह बम्बई पहुँचने वाला है। मनमोहन यह पत्र पढ़कर उदास गया। उसका टेलिफोन आया तो मनमोहन ने उससे कहा, 'मेरी दफ़्तर की बादशाही बस चन्द दिनों की मेहमान है।'

उसने पूछा, 'क्यों ?'

मनमोहन ने जवाब दिया, 'कर्जे का बन्दोबस्त हो गया है, दफ़्तर आबाद होने वाला है।'

'तुम्हारे किसी और दोस्त के यहाँ टेलीफोन नहीं है ?'

'कई दोस्त हैं जिनके टेलीफोन हैं; पर मैं तुम्हें उनका नम्बर नहीं दे सकता।'

'क्यों ?'

'मैं नहीं चाहता कि तुम्हारी आवाज कोई और सुने।'

'कारण ?'

'मैं बहुत ईर्ष्यालु हूँ।'

वह मुस्कराई, 'यह तो बड़ी मुसीबत हुई।'

'क्या किया जाय ?'

'आखिरी दिन जब तुम्हारी बादशाहत खत्म होने वाली होगी मैं तुम्हें अपना नम्बर बता दूंगी।'

'यह ठीक है।'

मनमोहन की सारी उदासी दूर हो गई। वह उस दिन की प्रतीक्षा करने लगा जब दफ्तर में उनकी बादशाहत खत्म हो। अब फिर उसने उसकी आवाज की मदद से अपनी कल्पना के पर्दे पर उसका चित्र बनाने की चेष्टा की। कई चित्र बने; परन्तु वह सन्तुष्ट न हुआ। उसने सोचा, चन्द दिनों की बात है, उसने टेलिफोन नम्बर बता दिया तो मैं उसे देख भी सकूंगा।' उसका विचार आते ही उसका दिल व दिमाग सुन्न हो जाता। 'मेरी जिन्दगी का वह क्षण कितना महान क्षण होगा जब मैं उसे देख सकूंगा।'

दूसरे दिन जब उसका टेलीफोन आया तो मनमोहन ने उससे कहा, 'तुम्हें देखने की उत्कण्ठा सजीव हो रही है।

'क्यों ?'

'तुमने कहा था कि अन्तिम दिन जब यहां मेरी बादशाहत खत्म होने वाली होगी तो तुम मुझे अपना नम्बर बता दोगी।'

'कहा था।'

'इसका मतलब यह है कि तुम मुझे अपना पता दे दोगी—यानी मैं तुम्हें देख सकूंगा।'

'तुम मुझे जब चाहो देख सकते हो; आज ही देख लो।'

'नहीं, नहीं।' फिर कुछ सोचकर कहा। 'मैं जरा अच्छे वस्त्रों में तुमसे मिलना चाहता हूँ। आज ही एक दोस्त से कह रहा हूँ। वह मुझे सूट सिलवा देगा।'

वह हँस पड़ी। 'बिल्कुल बच्चे हो तुम ! सुनो, जब तुम मुझ से मिलोगे तो एक उपहार दूंगी !'

मनमोहन ने भावुकता के स्वर में कहा, 'तुम्हारे दर्शनों से बढ़कर और कोई उपहार क्या हो सकता है ?'

'मैंने तुम्हारे लिये ऐक्जेक्टा कैमरा खरीद लिया है।'

'ओह !'

'इस शर्त पर दूँगी कि पहले मेरा फोटो उतारो।'

मनमोहन मुस्कराया, 'इस शर्त का फैसला मुलाकात पर करूँगा।'

थोड़ी देर और बातचीत हुई; उसके बाद उधर से वह बोली, 'मैं कल और परसों तुम्हें टेलीफोन नहीं कर सकूँगी।'

मनमोहन ने चिन्ताजनक स्वर में पूछा, 'क्यों ?'

मैं अपने कुटुम्बियों के साथ बाहर जा रही हूँ; केवल दो दिन तक अनुपस्थित रहूँगी। मुझे क्षमा कर देना।'

यह सुनने के बाद मनमोहन सारे दिन दफ़्तर ही में रहा। दूसरे दिन सुबह उठा तो उसे बुखार-सा अनुभव हुआ। उसने सोचा कि यह उदासी शायद इसलिए है कि उसका टेलीफोन नहीं आयेगा। लेकिन दोपहर तक बुखार तेज़ हो गया; शरीर तपने लगा; आँखों से अंगारे फूटने लगे। मनमोहन मेज़ पर लेट गया। प्यास बार-बार सताती थी। वह उठता और नल से मुँह लगाकर पानी पीता। शाम के करीब उसे अपने सीने पर बोझ महसूस होने लगा; दूसरे दिन वह बिल्कुल निढाल था। साँस बड़ी कठिनाई से आता था; सीने की दुखन बहुत बढ़ गई थी।

कई बार उस पर बेहोशी-सी छा गई। बुखार की तेज़ी में वह घण्टों टेलीफोन पर अपनी प्रिय आवाज़ के साथ बातें करता रहा। शाम को उसकी हालत बहुत ज्यादा बिगड़ गई; धुँधलाई हुई आँखों से उसने क्लाक की ओर देखा। उसके कानों में अजीबो-गरीब आवाजें गूँज रही थीं जैसे हजारों टेलीफोन बोल रहे हों। सीने में घुँघरू से बज रहे थे—चारों ओर आवाजें-ही-आवाजें थीं, इसलिए जब टेलीफोन की घंटी बजी तो उसके कानों तक उसकी आवाज न पहुँची। बहुत देर तक घंटी बजती रही। एकदम मनमोहन चौंका उसके कान सब सुन रहे थे। वह लड़खड़ाता हुआ उठा और टेलिफोन तक

गया; दीवार का सहारा लेकर उसने काँपते हुए हाथों से रिसीवर उठाया और रूखे होठों पर लकड़ी जैसी जीभ फेरकर कहा, 'हलो !'

दूसरे सिरे से वह लड़की बोली, 'हलो, मनमोहन !'

'जरा ऊँचा बोलो..........'

मनमोहन ने कुछ कहना चाहा किन्तु वह सब उसके कंठ में रुँधकर रह गया।

आवाज आई, 'मैं जल्दी आ गई, बड़ी देर से तुम्हें रिंग कर रही हूँ, कहाँ थे तुम ?'

मनमोहन का सिर घूमने लगा ।

आवाज आई, 'क्या हो गया है तुम्हें ?'

मनमोहन ने बड़ी मुश्किल से इतना कहा कहा, मेरी बादशाहत खत्म होगई है आज ।' उसके मुँह से खून निकला और एक पतली रेखा की भाँति गर्दन तक दौड़ता चला गया ।

आवाज आई, 'मेरा नम्बर नोट कर लो—फ़ाइव नॉट थ्री वन फ़ोर; फ़ाइव नॉट थ्री वन फ़ोर। सुबह फ़ोन करना ।' यह कहकर उसने रिसीवर रख दिया। मनमोहन औंधे मुँह टेलिफोन पर गिरा—उसके मुँह से खून के बुलबुले फूटने लगे।

निक्की

तलाक लेने के बाद वह बिल्कुल नवीन हो गई थी । अब वह हर रोज का दांता-किलकिल और मार-कुटाई नहीं थी । निक्की बड़े आराम और इत्मीनान से अपना गुजर-बसर कर रही थी ।

यह तलाक पूरे दस वर्ष बाद हुई थी । निक्की का पति बहुत क्रूर व्यक्ति था—पहले दर्जे का निखट्टू और शराबी-कबाबी । भंग-चरस की भी लत थी । कई-कई दिन भंगड़खानों में पड़ा रहता था । एक लड़का हुआ था, वह पैदा होते ही मर गया । कई वर्ष बाद एक लड़की हुई जो जीवित थी और अब नौ वर्ष की थी ।

निक्की से उसके पति गाम को यदि दिलचस्पी थी तो सिर्फ इतनी कि वह उसे मार-पीट सकता था; जी भर के गालियाँ दे सकता था । तबियत में आये तो कुछ घर्म के लिए घर से निकाल देता था । इसके अतिरिक्त निक्की से उसे और कोई सरोकार नहीं था । मेहनत-मजदूरी की जब थोड़ी-सी रकम निक्की के पास जमा होती थी तो वह उससे जबरदस्ती छीन लेता था ।

तलाक बहुत पहले ही चुकी थी; इसलिए पति-पत्नी के निर्वाह की कोई संभावना ही नहीं थी । यह केवल गाम की जिद थी कि मामला इतनी देर लटका रहा, इसके अलावा एक बात यह भी थी कि निक्की के आगे पीछे कोई भी न था । माँ-बाप ने उसे डोली में डालकर गाम के सुपुर्द किया और दो मास के अन्दर-अन्दर वे परलोकवासी हो गये । जैसे उन्होंने केवल इसी उद्देश्य के हेतु मृत्यु को टाल रखा था । उन्हें अपनी पुत्री को एक लम्बी मौत के लिए गाम के हवाले करना था । उन्होंने खुद को और ज्यादा दूर कर लिया था ।

गाम कैसा है यह निक्की के माँ-बाप भली भाँति जानते थे। उनकी बेटी उम्र भर रोती रहेगी यह भी उन्हें अच्छी तरह मालूम था। मगर उन्हें तो अपने जीवन-काल में एक कर्त्तव्य पूरा करना था और वह कर्त्तव्य उन्होंने ऐसा पूरा किया कि सारा भार निक्की के दुर्बल कंधों पर डाल गये।

तलाक लेने से निक्की का यह मतलब नहीं था कि वह किसी शरीफ आदमी से 'निकाह' करना चाहती थी। दूसरी शादी का उसे कभी खयाल तक भी नहीं आया था। तलाक होने के बाद वह क्या करेगी, न ही उसके बारे में भी निक्की ने कभी सोचा था। असल में वह हर रोज की बक-बक झकझक से सिर्फ एक सतोष की साँस लेना चाहती थी। उसके बाद जो होने वाला था उसे निक्की सहर्ष सहन करने को तैयार थी।

लड़ाई-झगड़े का श्रीगणेश तो पहले ही दिन हो गया था जब निक्की दुल्हन बन कर गाम के घर आई थी। लेकिन तलाक का सवाल उस समय पैदा हुआ था जब वह गाम के सुधार के लिए दुआयें माँग-माँग कर लाचार हो गई थी और उसके हाथ अपनी या उसकी मौत के लिए उठने लगे थे। जब यह प्रयास भी निरर्थक सिद्ध हुआ तो उसने अपने पति की मिन्नत-समाजत शुरू की कि वह उसे बख्श दे और अलग करदे। लेकिन प्रकृति की विडम्बना देखिए कि दस वर्ष के पश्चात् तकिये में एक अधेड़ उम्र की मीरासन से गाम की आँख लड़ी और एक दिन उसके कहने पर उसने निक्की को तलाक दे दी और बेटी पर भी अपना कोई हक न जताया हालांकि निक्की को इस बात का हमेशा धड़का रहता था कि अगर उसका पति विवाह-विच्छेद के लिए सहमत होगया तो वह बेटी कभी उसके हवाले नहीं करेगा। बहरहाल निक्की नचीत होगई और एक छोटी-सी कोठरी किराये पर लेकर चैन के दिन बिताने लगी।

उसके दस वर्ष उदास खामोशी में व्यतीत हुये थे। दिल में हर रोज उसके बड़े-बड़े तूफान जमा होते थे परन्तु वह पति के सम्मुख उफ तक नहीं कर सकती थी; इसलिए कि उसे बचपन ही से शिक्षा मिली थी कि पति के सामने बोलना ऐसा पाप है जो कभी क्षमा किया ही नहीं जाता। अब वह स्वतंत्र थी; इस-लि[illegible]ती थी कि अपनी दस वर्ष की भड़ास किसी-न-किसी तरह

निकाले। अतः पड़ोसियों से उसकी अक्सर लड़ाई-भिड़ाई होने लगी। मामूली तू-तू, मैं-मैं होती जो गालियों की जंग में तब्दील हो जाती। निक्की पहले जितनी खामोश थी अब उसकी उतनी ही तेज जुबान चलती थी। मिनटा-मिनटी में अपने प्रतिद्वन्द्वी की सातों पीढ़ियाँ पुनकर रख देती—ऐसी-ऐसी गालियाँ और सठनियाँ देती कि शत्रु के छक्के छूट जाते।

धीरे-धीरे सारे मुहल्ले पर निक्की की धाक बैठ गई। यहाँ कारोबार वाले मर्द रहते थे जो सुबह-सवेरे उठकर काम पर निकल जाते और रात को देर से घर लौटते। सारे दिन में औरतों में लड़ाई-झगड़ा होता। उससे वे मर्द बिल्कुल अलग-अलग रहते थे। उनमें से शायद किसी को पता भी नहीं था कि निक्की कौन है और मुहल्ले की सारी औरतें उससे क्यों दबती हैं?

चर्खा कातकर बच्चों के लिए गुड्डे-गुड़ियाँ बनाकर और इसी तरह के छोटे-मोटे काम करके वह अपने निर्वाह के लिए कुछ-न-कुछ पैदा कर लेती थी। तलाक लिये लगभग एक वर्ष हो चला था। उसकी बेटी भोली अब ग्यारह के लगभग थी और बड़ी द्रुत गति से युवावस्था को पहुँच रही थी। निक्की को उसकी शादी-ब्याह की बड़ी चिन्ता थी। उसके अपने जेवर थे जो एक-एक करके गाम ने चट कर लिये थे—एक केवल नाक की कील शेष रह गई थी; वह भी घिस-घिसाकर आधी रह गई थी। उसे भोली का पूरा दहेज बनाना था और उसके लिए काफी रुपया दरकार था। शिक्षा उसने अपनी ओर से ठीक दी थी—कुरान खत्म करा दिया था। उसे मामूली अक्षर-ज्ञान था। खाना पकाना खूब आता था। घर के दूसरे काम-काज भी भली प्रकार जानती थी। चूँकि निक्की को अपने जीवन में बड़ा कटु अनुभव हुआ इसलिए उसने भोली को पति की आज्ञा-पालन का कभी संकेत से भी उपदेश न दिया था। वह चाहती थी कि उसकी बेटी ससुराल में छपरखट पर बैठी राज करे।

माँ के साथ जो कुछ बीता था उस विपदा का सारा हाल भोली को मालूम था। परन्तु पड़ोसियों के साथ जब निक्की की लड़ाई होती थी तो वे पानी पी-पीकर उसे कोसती थीं और यह ताना देती थीं कि उसे तलाक दी गई है। जिसे पति ने केवल इस कारण से अलग किया था कि उस बेचारे का

नाक में दम कर रखा था और बहुत-सी बातें अपनी माँ के चरित्र तथा स्वभाव के बारे में वह सुनती थी परन्तु वह मूक रहती थी। बड़े-बड़े मार्के की लड़ाइयाँ होतीं किन्तु वह कान लपेटे अपने काम में लगी रहती।

जब सारे मुहल्ले पर निक्की की धाक बैठ गई तो कई स्त्रियों ने उसके रोब में आकर उसके पास आना जाना शुरू कर दिया, कई उसकी सहेलियाँ बन गईं। जब उनकी अपनी किसी पड़ोसिन से लड़ाई होती तो निक्की साथ देती और उसकी यथा संभव सहायता करती। इसके बदले में उसे कमीज के लिए कपड़ा मिल जाया करता था, कभी फल कभी मिठाई और कभी-कभी कोई चोली के लिए गूट भी मिलवा देता था। लेकिन जब निक्की ने देखा कि हर दूसरे-तीसरे दिन उसे मुहल्ले की किसी-न-किसी औरत की लड़ाई में भाग लेना पड़ता है और उसके काम-काज में बाधा होती है तो उसने पहले दबी जुबान से, फिर खुले शब्दों में अपना पारिश्रमिक मांगना आरंभ कर दिया और धीरे-धीरे अपनी फ़ीस भी निश्चित कर ली। मार्के की जंग हो तो पच्चीस रुपये; दिन अधिक लगें तो चालीस। मामूली खटपट के केवल चार रुपये और दो जून खाना। मध्यम श्रेणी की लड़ाई हो तो पन्द्रह रुपये और किसी की सिफारिश हो तो वह कुछ रिआयत भी कर देती थी।

अब चूँकि उसने दूसरों की ओर से लड़ना अपना पेशा बना लिया था। इसलिए उसे मुहल्ले की तमाम स्त्रियों और उनकी बहू-बेटियों के समस्त निर्णय याद रखने पड़ते थे। उनकी सारी वंशावली ज्ञात करके अपनी स्मृति में सुरक्षित रखनी पड़ती थी। उदाहरण के लिए उसे मालूम था कि ऊँची हवेली वाली सौदागर की पत्नी जो अपनी नाक पर मक्खी नहीं बैठने देती एक मोची की बेटी है, उसका बाप शहर में लोगों के जूते गाँठता फिरता है, और उसका पति जो जनाब शेख साहब कहलाता है, मामूली कसाई था, उसके बाप पर एक रण्डी मेहरबान हो गई थी, वह उसी के गर्भ से था, और यह ऊँची हवेली उस वेश्या ने अपने यार को बनाकर दी थी।

किस लड़की का किसके साथ इश्क है; कौन किसके साथ भाग गई थी; कौन कितने गर्भपात करा चुकी है, इसका हिसाब सब निक्की को मालूम

था। तमाम सूचना प्राप्त करने में वह काफी मेहनत करती थी और कुछ कसाला उसे अपने मुवक्किलों से मिल जाता था। उसे अपनी सूचना के साथ मिलाकर वह ऐसे-ऐसे बम बनाती कि स्पर्धी के छक्के छूट जाते थे। होशियार वकीलों की भाँति वह सबसे भारी आघात उसी समय लगाती थी, जब लोहा पूरी तरह लाल हो जाता। अतएव उसका यह आघात सोलह आने निर्णयात्मक सिद्ध होता था।

जब वह अपने मुवक्किल के साथ किसी मोर्चे पर जाती थी तो घर से पूर्णतया कील-कांटों से लैस होकर जाती थी। ताने, महनों, गालियों और सठनियों को प्रभावशाली बनाने लिए विभिन्न वस्तुओं का प्रयोग करती थी। उदाहरणार्थ घिसा हुआ जूता, फटी हुई कमीज, चिमटा, फुंकनी आदि-आदि। कोई उपमा-विशेष देनी हो या कोई विशेषतम संकेत की आवश्यकता हो तो इस उद्देश्य के लिए जरूरी चीजें घर ही से लेकर चलती थी।

कभी-कभी ऐसा भी होता कि आज वह जनते के लिए खैरों से लड़ी है तो दो-चार महीने के पश्चात् उसी खैरों से दुबारा फीस लेकर उसे जनते से लड़ना पड़ता था। ऐसे मौकों पर वह घबराती नहीं थी। उसे अपनी कला में इतना दक्षता प्राप्त हो गई थी और उस कला को प्रैक्टिस में वह इतनी ईमानदार थी कि यदि कोई फीस देता तो वह अपनी भी धज्जियाँ बिखर देती।

निक्की अब निश्चिन्त थी। हर महीने उसे अब इतनी आमदनी होने लगी थी कि उसने बचाकर अपनी बेटी भोली का दहेज बनाना शुरू कर दिया था। थोड़े ही वर्षों में इतने गहने पाते और कपड़े-लत्ते हो गये थे कि वह किसी भी समय अपनी बेटी को डोली में डाल सकती थी।

अपनी मिलने वालियों से वह भोली के लिए कोई अच्छा-सा वर तलाश करने की बात कई बार कह चुकी थी। शुरू-शुरू में तो उसे कोई इतनी जल्दी नहीं थी लेकिन जब भोली सोलह वर्ष की हो गई—लोठा-की-लोठा, कद-काठ की चूंकि अच्छी थी, इसलिए चौदहवें बरस ही में पूरी जवान औरत बन

गई थी। सचमुच में तो ऐसा लगता था कि वह उसकी छोटी बहन है। अतएव अब निक्की को दिन-रात उसके विवाह की चिन्ता सताने लगी।

निक्की ने बड़ी दौड़-धूप की। कोई साफ तो इन्कार नहीं करता था। मगर दिल से हामी भी नहीं भरता था। उसने महसूस किया कि हो-न-हो लोग उससे डरते हैं। उसकी यह विशेषता कि लड़ने की कला में वह अपना सानी नहीं रखती थी दरअसल उसकी बाधक बन रही थी। कुछ घरों में तो वह खुद ही कुछ न बोलती क्योंकि उनकी किसी औरत की उसने कभी बोलती बन्द कर दी थी; दिन-पर-दिन चढ़ते जा रहे थे और घर में पहाड़-सी जवान बेटी कुँवारी बैठी थी।

निक्की को अपने पेशे से अब घृणा होने लगी थी। उसने सोचा कि ऐसा नीच काम क्यों उसने अपनाया, परन्तु वह क्या करती? मुहल्ले में आराम चैन की जगह पैदा करने के लिए उसे पड़ोसियों का सामना करना ही था। अगर वह न करती तो उसे दबकर रहना पड़ता। पहले पति के जूते खाती थी, फिर इनकी जूतियाँ खाती। यह विचित्र बात थी कि वर्षों दबैल रहने के बाद जब उसने अपना झुका हुआ सिर उठाया और विरोधी शक्तियों का सामना करके उन्हें परास्त किया, ये शक्तियाँ झुककर उसकी सहायता की भिखारिणी बनीं कि वे दूसरी शक्तियों को परास्त करे और उसे इस सहायता की ओर कुछ इस प्रकार प्रवृत्त किया गया कि उसे चसका ही पड़ गया।

इसके बारे में वह सोचती तो उसका दिल न मानता था, उसने सिर्फ भोली के कारण इस पेशे को जिसे अब कुकर्म समझने लगी थी, अपनाया था। यह भी कुछ कम अजीब बात नहीं थी। निक्की को रुपये देकर किसी औरत पर उंगली रख दी जाती थी और उससे कहा जाता था कि वह उसकी सातों पीढ़ियाँ पुन डाले। उसके पूर्वजों की सारी कमजोरियाँ, अतीत के मलबे से कुरेद-कुरेद कर निकाले और उसके अस्तित्व पर ढेर कर दे। निक्की यह काम बड़ी ईमानदारी से करती। वे गालियाँ जो उसके मुँह में ठीक नहीं बैठती थीं, अपने मुँह से बिठाती। उनकी बहू-बेटियों के दोषों पर

पर्दे डालकर वह दूसरों की बहू-बेटियों में कीड़े डालती। गन्दी-से-गन्दी गालियाँ अपने उन मुवक्किलों के कारण खुद भी खाती। पर अब जब कि उसकी बेटी के विवाह का प्रश्न उठ खड़ा हुआ था, वह कमीनी, नीच और अधम बन गई थी।

एक-दो बार तो उसके जी में आई कि मुहल्ले की उन तमाम औरतों को, जिन्होंने उसकी बेटी को रिश्ता देने से इन्कार कर दिया था, बीच चौराहे में एकत्र करे और ऐसी गालियाँ दे कि उनके दिल के कानों के पर्दे फट जायें। मगर वह सोचती कि अगर उसने ऐसी गलती कर दी तो बेचारी भोली का भविष्य बिल्कुल अंधकारमय हो जायगा।

जब वह चारों ओर से निराश हो गई तो निक्की ने शहर छोड़ने का विचार कर लिया। अब उसके लिए सिर्फ यही रास्ता था जिससे भोली के विवाह की कठिन समस्या हल हो सकती थी। अतः उसने एक दिन भोली से कहा, 'बेटी, मैंने सोचा है कि अब किसी और शहर में जा रहें।'

भोली ने चौंककर पूछा, 'क्यों माँ?'

'बस अब यहाँ रहने को जी नहीं चाहता। निक्की ने उसकी ओर ममता-भरी दृष्टि से देखा और कहा, 'तेरे ब्याह की फिक्र में घुली जा रही हूँ। यहाँ बेन अच्छे नहीं चलेंगे। तेरी माँ को सब नीच समझते हैं।

भोली काफी सयानी थी, फौरन निक्की का मतलब समझ गई। उसने केवल इतना कहा, 'हाँ माँ!'

निक्की को इन दो शब्दों से बहुत दुख पहुँचा। बड़े दुःखी स्वर में उसने भोली से प्रश्न किया, 'क्या तू भी मुझे नीच समझती है?'

भोली ने उत्तर न दिया और आटा गूँधने में व्यस्त हो गई।

उस दिन निक्की ने अजीब बातें सोचीं: उसके प्रश्न पूछने पर भोली चुप क्यों हो गई थी? क्या वह उसे वास्तव में नीच समझती है? क्या वह इतना भी न कह सकती थी, 'नहीं माँ!' क्या यह बाप के खून का असर था? बात में-से-बात निकल आती और वह बुरी तरह उसमें उलझ जाती। उसे बीते हुए वर्ष याद आते—ब्याही जिन्दगी के दस वर्ष—जिसका एक-एक दिन

मार-पीट और गाली-गलौज से भरा था। फिर वह अपनी नजरों के सामने तलाक-शुदा जिन्दगी के दिन लाती। उनमें भी गालियां-ही-गालियां थीं जो वह पैसों के लिए दूसरों को देती रहती थी। थक-हारकर वह कभी कभी कोई सहारा ढूंढने लगती, और सोचती, 'क्या ही अच्छा होता कि वह तलाक न लेती। आज बेटी का बोझ गाम के कंधों पर होता। निखट्टू था, पर्ले दर्जे का जालिम मगर बेटी के लिए जरूर कुछ-न-कुछ करता। यह उसकी कम-हिम्मती की पराकाष्ठा थी।

पुरानी मारें और उनके दबे हुए दर्द अब आहिस्ता-आहिस्ता निक्की के जोड़ों में उभरने लगे। पहले उसने कभी उफ तक न की थी, पर अब उठते-बैठते हाय-हाय करने लगी। उसके कानों में हर वक्त एक शोर-सा बरपा होने लगा जैसे उनके पर्दों पर वे तमाम गालियां और सठनियां टकरा रही हैं जो अनगिनत लड़ाइयों में उसने इस्तमाल की थीं।

उम्र उसकी ज्यादा नहीं थी; चालीस के लगभग थी। मगर अब निक्की को ऐसा महसूस होता था कि बूढ़ी हो गई है; उसकी कमर जवाब दे चुकी है। उसकी जुबान जो कैंची की तरह चलती थी, अब बन्द हो गई है। भोली से घर के काम-काज के बारे में मामूली-सी बात करते हुए उसे परिश्रम करना पड़ता था।

निक्की बीमार पड़ गई और चारपाई के साथ लग गई। शुरू-शुरू में तो वह इस बीमारी का मुकाबिला करती रही। भोली को भी उसने खबर न होने दी कि अन्दर-ही-अन्दर कौन सी दीमक उसे चाट रही है। लेकिन एकदम वह ऐसी निढाल हुई कि उससे उठा तक न गया। भोली को बहुत चिन्ता हुई। उसने हकीम को बुलाया जिसने नब्ज देखकर बताया कि फिक्र की कोई बात नहीं पुराना बुखार है इलाज से दूर हो जाएगा।

इलाज बाकायदा होता रहा। भोली आज्ञाकारी पुत्री की नाईं मा की यथाशक्ति सेवा-सुश्रूषा करती रही जिससे निक्की के दुःखी दिल को काफी संतोष होता था किन्तु रोग दूर न हुआ। बुखार पहले से तेज हो गया और धीरे-धीरे निक्की की भूख गायब हो गई जिसके कारण वह बहुत ही दुर्बल और कमजोर हो गई।

स्त्रियों मे एक ईश्वरदत्त गुण होता है कि रोगिणी की सूरत देखकर ही पहचान लेती हैं कि वह कितने दिनों की मेहमान है। एक-दो औरतें जब बीमार-पुर्सी के लिए निक्की के पास आईं तो उन्होंने अनुमान लगाया कि वह मुश्किल से दस रोज निकालेगी, चुनांचे बात सारे मुहल्ले को मालूम हो गई।

कोई बीमार हो, मरणासन्न हो तो स्त्रियों के लिए एक अच्छे-खासे मनोरंजन की सामग्री मिल जाती है। घर से बन-सँवर कर निकलती हैं और मरीज के सिरहाने बैठकर अपने सारे स्वर्गीय कुटुम्बियों को याद करती हैं। उनकी बीमारियों का जिक्र होता है। वह तमाम इलाज बयान किये जाते हैं जो ला इलाज साबित हुए थे। फिर बातचीत का रुख पलट कर कमीजों के नये डिजाइनों की तरफ आ जाता है।

निक्की ऐसी बातों से बहुत घबराती थी लेकिन वह खुद चूँकि मरीजों के सिरहाने ऐसी ही बातें करती रही थी इसलिए विवश हो उसे यह बकवास सुननी पड़ती थी। एक दिन जब मुहल्ले की बहुत-सी स्त्रियाँ उसके घर मे एकत्र हो गई तो इस अनुभव ने उसे बहुत व्याकुल किया कि अब उसका वक्त आ चुका है। उनमें से हरेक के चेहरे पर यह फैसला लिखा हुआ था कि निक्की के दरवाजे पर मौत दस्तक दे रही है। जो स्त्री आती अपने साथ यह खटखट लाती। तंग आकर कई बार निक्की के जी मे आई कि कुण्डी खोल दे और खटपट करने वाले फरिश्ते को अन्दर बुला ले।

इन बीमार-पुर्स औरतों को सबसे बड़ा अफसोस भोली का था। निक्की से वे बार-बार इसका जिक्र करती कि हाय इस बेचारी का क्या होगा? दुनिया में बेचारी की सिर्फ एक मां है, वह भी चली गई तो उसका क्या होगा। फिर वह भी अल्लाह मियाँ से दुआ करती कि वह निक्की की जिन्दगी मे कुछ दिनों की वृद्धि करदे ताकि वह भोली की ओर से सन्तुष्ट हो कर मरे।

निक्की को अच्छी तरह मालूम था कि यह दुआ बिल्कुल झूठी है। उन्हें भोली का इतना खयाल होता तो वे उसके रिश्ते से इन्कार क्यों करतीं? साफ

इन्कार नहीं किया था; इसलिए कि यह दुनियादारी के नियमों के विरुद्ध था परन्तु किसी ने हामी नहीं भरी थी।

वह छोटा-सा कमरा जिसमें निक्की चारपाई पर पड़ी थी बीमार-पुर्स औरतों से भरा हुआ था। भोली ने उनके बैठने का प्रबन्ध ऐसा मालूम होता है पहले ही से कर रखा था। पीढ़ियां कम थीं, इसलिए उसने खजूर के पत्तों की चटाई बिछा दी थी। भोली के इस इन्तजाम से निक्की को बड़ा सदमा पहुँचा था मानो वह अन्य स्त्रियों की भांति उसकी मृत्यु के स्वागत के लिए तत्पर थी।

बुखार तेज था, दिमाग तपा हुआ था। निक्की ने ऊपर-तले बहुत-सी कष्ट-प्रद बातें सोचीं तो बुखार और तेज हो गया और उन पर बेहोशी छा गई। जल्दी-जल्दी बेजोड़ बातें करने लगी। बीमार-पुर्स औरतों ने अर्थपूर्ण दृष्टि से एक दूसरी की ओर देखा। वे जो उठकर जाने वाली थीं निक्की का अन्त-काल समीप देखकर बैठ गईं।

निक्की बके जा रही थी; ऐसा प्रतीत होता था मानो वह किसी से लड़ रही है। मैं तेरी हिश्त-पुश्त को अच्छी तरह जानती हूं। जो कुछ तूने मेरे साथ किया है वह कोई दुश्मन के साथ भी नहीं करता। मैंने अपने पति की दस बरस गुलामी की। उसने मार-मार कर मेरी खाल उधेड़ दी पर मैंने उफ तक न की। अब तूने···अब तूने मुझ पर यह जुल्म शुरू किए हैं।' फिर वह कमरे में एकत्रित स्त्रियों को फटी-फटी नजरों से देखती, 'तुम यहां क्या करने आई हो ?······नहीं, नहीं, मैं किसी फीस पर लड़ने के लिए तैयार नहीं··· तुम में से हरेक के दोष वही हैं—पुराने—सदियों के पुराने। जो कीड़े फामां में हैं वही तुम सब में हैं। जो बुरी बीमारी फातो के घर वाले को लगी है वही जनते के घर वाले को चिमटी हुई है। तुम सब कोढ़ी हो, और यह कोढ़ तुमने मुझे भी दे दिया है। लानत हो तुम सब पर खुदा की—खुदा की—खुदा···' और वह हँसने लगी। 'मैं उस खुदा को भी जानती हूँ—उसकी हिश्त-पुश्त को अच्छी तरह जानती हूं। यह क्या दुनियां बनाई है तूने ? यह दुनिया जिसमें गामा हैं, जिसमें फामा है जो अपने पति को छोड़कर दूसरों के बिस्तर

गरम करती है; और मुझे कोस देती है। बीस रुपये गिनकर मेरे हाथ पर रखती है कि मैं नूर फ़िज़ाँ की पुरानी यारानी का पोल खोलूँ और नूर फ़िज़ाँ मेरे पास आती है कि निक्की से पाँच ज्यादा लो, जाओ अमीना से लड़ो। वह मुझे सताती है। यह क्या चक्कर चलाया हुआ है तूने अपनी दुनियाँ में ?··· मेरे सामने···जरा मेरे सामने आ।'

आवाज निक्की के कण्ठ में रुकने लगी। थोड़ी देर के बाद घुंघरू बजने लगा। शरीर के तनाव से वह छटपटा रही थी। वह बेहोशी की हालत में चिल्ला रही थी, 'राम, मुझे न मार ! ओ राम···ओ खुदा, मुझे·· न मार · ओ खुदा ··ओ राम !'

ओ खुदा, ओ राम कहकहाती आखिर निक्की बीमार-पुर्स औरतों के अनुमानानुसार मर गई। भोली, जो स्त्रियों की आतिथ्य-परायणता में व्यस्त थी, पानी का ग्लास हाथ से गिराकर धड़ाधड़ सिर पीटने लगी।

शादी

जमील को अपना 'शेफर लाइफ टाइम' कलम मरम्मत के लिए देना था। उसने टेलिफोन डायरेक्टरी में शेफर कम्पनी का नम्बर तलाश किया। फोन करने से मालूम हुआ कि उनके एजेन्ट मेसर्स डी० जे० सैमुएल हैं जिनका दफ्तर ग्रीन होटल के समीप स्थित है।

जमील ने टैक्सी ली और फोर्ट की ओर चल दिया। ग्रीन होटल पहुँच कर उसे मेसर्स डी० जे० सैमुएल का दफ्तर तलाश करने में दिक्कत न हुई, बिल्कुल पास था मगर तीसरी मंजिल पर।

लिफ्ट के जरिए जमील वहां पहुँचा। कमरे में दाखिल होते ही लकड़ी की दीवार की छोटी-सी खिड़की के पीछे उसे एक सुन्दर एंग्लो-इण्डियन लड़की नजर आई जिसकी छातियाँ असाधारण रूप से उभरी हुई थीं। जमील ने कलम उस खिड़की के अन्दर दाखिल कर दिया और मुँह से कुछ न बोला। लड़की ने कलम उसके हाथ से ले लिया। खोलकर एक नजर देखा और एक स्लिप पर कुछ लिख कर जमील के हवाले कर दी। मुँह से वह भी कुछ न बोली।

जमील ने स्लिप देखी; कलम की रसीद थी। चलने ही वाला था कि पलट कर उसने लड़की से पूछा, 'दस-बारह रोज तक तैयार हो जाएगा, मेरा ख्याल है।'

लड़की बड़े जोर से हँसी। जमील कुछ खिसियाना-सा हो गया, 'मैं आपकी इस हँसी का मतलब नहीं समझा।'

लड़की ने खिड़की के साथ मुँह लगा कर कहा, 'मिस्टर, आजकल वार वार, यह कलम अमरीका जायगा। तुम दो महीने के बाद तलाश करना।'

जमील बौखला गया, 'नौ महीने ?'

लड़की ने अपने कटे हुए बालों वाला सिर हिलाया; जमील ने लिफ्ट का रुख किया।

यह नौ महीने का सिलसिला खूब था ! नौ महीने ? इतनी मुद्दत के बाद तो औरत मसलूमन बच्चा पैदा करके एक तरफ रख देती है। नौ महीने—नौ महीने तक इस छोटी-सी स्लिप को सँभाले रखो। और यह भी कौन निश्चित रूप से कह सकता है कि नौ महीने तक आदमी याद रख सकता है कि उसने एक कलम मरम्मत के लिए दिया था। हो सकता है इस दौरान में वह कमबख्त मर-खप ही जाय।

जमील ने सोचा, यह सब ढकोसला है। क़लम में मामूली-सी खराबी थी कि उसका फ़ीडर जरूरत से ज्यादा स्याही सप्लाई करता था; इसके लिए उसे अमरीका के अस्पताल में भेजना सरासर नामबाजी थी। मगर फिर उसने सोचा—लानत भेजो जी इस क़लम पर अमरीका जाये या अफ्रीका। इसमें शक नहीं उसने यह ब्लैक मार्केट से एक सौ पचहत्तर रुपये में खरीदा था। मगर उसने एक साल उसे खूब इस्तेमाल भी तो किया था—हजारों पृष्ठ काले कर डाले थे। अतः वह निराशा से एक दम आशावान बन गया था और आशावान बनते ही उसे खयाल आया कि वह फ़ोर्ट में है और फ़ोर्ट में अनगिनत शराब की दूकानें हैं। व्हिस्की तो जाहिर है नहीं मिलेगी लेकिन फ्रांस की बेहतरीन क्विक ब्रांडी तो मिल जयगी। चुनांचे उसने करीब वाली शराब की दुकान का रुख किया।

ब्रांडी की एक बोतल खरीद कर वह लौट रहा था कि ग्रीन होटल के पास आकर रुक गया। होटल के नीचे क़द्दे-आदम शीशों का बना हुआ क़ालीनों का शोरूम था। यह जमील के दोस्त पीर साहब का था।

उसने सोचा चलो अन्दर चलें। चुनांचे कुछ क्षणों के बाद ही वह शोरूम में था और अपने मित्र पीर साहब से, जो उम्र में उससे काफी बड़ा था, हँसी मज़ाक की बातें कर रहा था।

ब्रांडी की बोतल बारीक कागज में लिपटी दबीज ईरानी कालीन पर

लेटी हुई थी। पीर साहब ने उसकी ओर संकेत करते हुये जमील से कहा, यार, इस दुल्हन का घूँघट तो खोलो; जरा इससे छेड़खानी तो करो।

जमील मतलब समझ गया, 'तो पीर साहब, ग्लास और सोडे मँगवाइए, फिर देखिए क्या रंग जमता है।'

फौरन ग्लास और ठण्डे सोडे आ गए। पहला दौर हुआ, दूसरा दौर शुरू होने ही वाला था कि पीर साहब के एक गुजराती दोस्त अन्दर चले आये और बड़ी बेतकल्लुफी से कालीन पर बैठ गये। संयोगवश होटल का छोकरा दो के बजाय तीन ग्लास उठा लाया था। पीर साहब के गुजराती दोस्त ने बड़ी साफ़ उर्दू में कुछ इधर उधर की बातें की और ग्लास में यह बड़ा पेग डालकर उसे सोडे से लबालब भर लिया। तीन-चार लम्बे-लम्बे घूँट लेकर उन्होंने रूमाल से अपना मुँह साफ़ किया, 'सिगरेट निकालो यार।'

पीर साहब में सारे ऐब सही थे मगर वह सिगरेट नहीं पीते थे। जमील ने जेब से अपना सिगरेट केस निकाला और कालीन पर रख दिया और साथ ही लाइटर।

इस पर पीर साहब ने जमील से उस गुजराती दोस्त का परिचय कराया 'मिस्टर नटवर लाल, आप मोतियों की दल्लाली करते हैं।'

जमील ने क्षण भर के लिए सोचा—कोयलों की दल्लाली में तो दल्लाल का मुँह काला होता है, मोतियों की दल्लाली में ''

पीर साहब ने जमील की ओर देखते हुए कहा, 'मिस्टर जमील—मशहूर शार्ट-राइटर।'

दोनों ने हाथ मिलाया और ह्विस्की का नया दौर शुरू हुआ और ऐसा शुरू हुआ कि बोतल खाली हो गई।

जमील ने दिल में सोचा, 'यह कमबख्त मोतियों का दल्लाल धन्धा कर पीने वाला है। मेरी प्यास और सुरूर की सारी ह्विस्की चढ़ा गया। खुदा करे इसे मोतियाबिन्द हो!'

लेकिन ज्योंही आखिरी दौर के पेग ने जमील के पेट में अपने कदम

जमाते उसने नटवर लाल को माफ कर दिया। और अंत में उससे कहा, 'मिस्टर नटवर लाल उठिए, एक बोतल और हो जाय।'

नटवर फौरन उठा अपने शार्क स्किन की सिलवटें ठीक कीं, धोती की लांग ठीक की और कहा, 'चलिए !'

जमील पीर साहब से संबोधित हुआ, 'हम अभी हाजिर होते हैं।'

जमील और नटवर ने बाहर निकल कर टैक्सी ली और शराब की दूकान पर पहुंचे। जमील ने टैक्सी रोकी मगर नटवर ने कहा, 'मिस्टर जमील, यह दूकान ठीक नहीं। सारी चीजें महँगी बेचता है।' यह कह कर वह टैक्सी ड्राइवर से संबोधित हुआ, 'कोलाबा चलो।'

कोलाबा पहुंच कर नटवर जमील को शराब की एक छोटी-सी दूकान में ले गया। जो ब्रांडी जमील ने फोर्ट से ली वह तो न मिल सकी; एक दूसरी मिल गई जिसकी नटवर ने बहुत तारीफ की कि नम्बर वन चीज है।

यह नम्बर वन चीज खरीद कर दोनों बाहर निकले; पास ही में बार थी, नटवर रुक गया। 'मिस्टर जमील, क्या खयाल है आपका एक-दो पेग यहीं से पीकर चलते हैं।

जमील को कोई एतराज नहीं था इसलिए कि उसका नशा समाप्त होने वाला था; अतः दोनों बार के अन्दर दाखिल हुए। अचानक जमील को खयाल आया कि बार वाले तो कभी बाहर की शराब पीने की इजाजत नहीं दिया करते। 'मिस्टर नटवर आप यहाँ कैसे पी सकते हैं? ये लोग इजाजत नहीं देंगे।'

नटवर ने जोर से आँख मारी, 'सब चलता है।'

और यह कह कर वह एक केबिन के अन्दर घुस गया, जमील भी उसके पीछे हो लिया। नटवर ने बोतल संगीन तिपाई पर रखी और बैरे को आवाज दी। जब वह आया तो उसे भी आँख मारी, देखो दो सोडे शाँजर्स ठण्डे और दो ग्लास एकदम साफ़।

बैरा यह हुक्म सुन कर चला गया और फ़ौरन सोडे और ग्लास हाजिर

कर दिये। इस पर नटवर ने उसे दूसरी आज्ञा दी। फ़र्स्ट क्लास चिप्स और टोमाटो सॉस और फर्स्ट क्लास कटलेट।"

बैरा चला गया। नटवर जमील की ओर देख कर ऐसे ही मुस्कराया। बोतल का कार्क निकाला और जमील के ग्लास में उससे पूछे बिना एक डबल डाल दिया—पुर उससे कुछ ज्यादा। सोडा हल हो गया तो दोनों ने अपने ग्लास टकराये।

जमील प्यासा था, एक ही साँस में उसने आधा ग्लास ख़त्म कर दिया सोडा चूँकि बहुत ठण्डा और तेज था इसलिए फूँ-फूँ करने लगा।

दस-पन्द्रह मिनट के बाद चिप्स और कटलेट आगये। जमील सुबह घर से नाश्ता करके निकला था; लेकिन ब्राण्डी ने उसे भूख लगा दी। चिप्स गरम गरम थे कटलेट भी। वह पिल पड़ा, नटवर ने उसका साथ दिया। अतएव दो मिनट में दोनों प्लेटें साफ़।

दो प्लेटें और मँगवाई गईं। जमील ने अपने लिए चाप्स भी मँगवाये। दो घण्टे इसी प्रकार व्यतीत हो गये। बोतल की तीन चौथाई गायब हो चुकी थी, जमील ने सोचा कि अब पीर साहब के पास जाना बेकार है।

नशे खूब जम रहे थे; गुटर खूब घुट रहे थे। नटवर और जमील दोनों हवा के घोड़ों पर सवार थे। ऐसे सवारों को आम तौर पर ऐसी वादियों में जाने की बड़ी इच्छा होती है जहाँ इन्हें नग्न शरीर वाली सुन्दर युवतियाँ मिलें, वे उन्हें हाथ बाँध कर घोड़े पर बिठायें और यह जा वह जा।

जमील का दिल व दिमाग इस समय किसी ऐसी ही वादी के बारे में सोच रहा था जहाँ उसको किसी ऐसी ख़ूबसूरत औरत से मुठभेड़ हो जाये जिसे वह अपने तपते हुए सीने के साथ भींच ले—इस जोर से कि उसकी हड्डियाँ तक चटख़ जायें।

जमील को इतना तो मालूम था कि वह ऐसी जगह पर है—मतलब है ऐसे इलाके में है जो अपने ब्रॉथल्ज़ (वेश्यालय) के कारण सारे बम्बई में प्रसिद्ध है। जिन्हें ऐयाशी करना होती है वे इधर ही का रुख़ करते हैं। शहर से भी जिस लड़की को लुक-छिप कर पेशा करना होता है यहीं आती है।

इस सूचना के आधार पर उसने नटवर से कहा, 'मैंने कहा···वह···वह··· मेरा मतलब है इधर कोई छोकरी-वोकरी नहीं मिलती ?'

नटवर ने ग्लास में एक बड़ा पेग उँडेला और हँसा, 'मिस्टर जमील, एक नहीं हजारों···हजारों···हजारों।'

यह हजारों की रटन्त जारी रहती अगर जमील ने उसकी बात काटी न होती। 'इन हजारों में से आज एक ही मिल जाये तो हम समझें कि नटवर भाई ने कमाल कर दिया।'

नटवर भाई मजे में थे; झूमकर कहा, 'जमील भाई, एक नहीं हज़ारों। चलो इसे खत्म करो।'

दोनों ने बोतल में जो कुछ बचा था आधे घंटे के अन्दर-अन्दर खत्म कर दिया। बिल अदा करने और बैरे को तगड़ी टिप देने के बाद दोनों बाहर निकले। अन्दर अन्धेरा था बाहर धूप चमक रही थी। जमील की आँखें चौंधियां गईं। एक क्षण के लिए कुछ नज़र न आया। धीरे-धीरे उसकी आँखें तेज़ रोशनी की आदी हुईं तो उसने नटवर से कहा, 'चलो भाई।'

नटवर ने ऐयाशी लेने वाली नज़रों से जमील की ओर देखा। 'माल-पानी है ना ?'

जमील के होंठों पर नशीली मुस्कराहट पैदा हुई। नटवर की पसलियों में कुहनी से टहोका देकर उसने कहा, 'बहुत ! नटवर भाई बहुत !' और उसने जेब से पाँच नोट सौ-सौ के निकाले, क्या इतने काफी नहीं ?'

नटवर की बाछें खिल गईं, 'काफी। बहुत ज़्यादा हैं। चलो आओ पहले एक बोतल खरीद लें, वहाँ जरूरत पड़ेगी।'

जमील ने सोचा कि बात बिल्कुल ठीक है वहाँ जरूरत नहीं पड़ेगी तो क्या किसी मस्जिद में पड़ेगी। अतः फ़ौरन एक बोतल खरीद ली गई। टैक्सी खड़ी थी; दोनों उसमें बैठ गये और उस बादी में विचरण करने लगे।

सैकड़ों आथेल्ज़ थे—उनमें से बीस-पच्चीस को जाँचा-परखा गया मगर जमील को कोई औरत पसंद न आई। सब मेकअप की मोटी और शोख

तहों के अन्दर छिपी हुई थी। जमील चाहता था कि ऐसी लड़की मिले जो मरम्मत-शुदा मकान मालूम न हो। जिसे देखकर यह एहसास न हो कि जगह-जगह उखड़े हुए प्लास्टर के टुकड़ों पर बड़े भद्दाड़ीपन से सुर्खी और चूना लगाया गया है।

नटवर तंग आ गया; उसके सामने जो भी औरत आती वह जमील का कंधा पकड़ कर कहता, 'जमील भाई चलेगी?'

मगर जमील भाई उठ खड़ा होता, 'हाँ चलेगी और हम भी चलेंगे।'

दो जगहें और देखी गईं; मगर जमील को मायूसी का मुँह देखना पड़ा। वह सोचता था कि इन औरतों के पास कौन आता है जो मूमर के गोश्त के सूखे हुए टुकड़ों की तरह दिखाई देती हैं। उनकी अदाएँ कितनी घृणित हैं, उठने-बैठने का ढंग कितना अश्लील है और कहने को ये प्राइवेट हैं—यानी ऐसी औरतें जो चोरी-छिपे पेशा करती हैं। जमील की समझ में नहीं आता था कि यह पर्दा है कहाँ जिसके पीछे ये धन्धा करती हैं?

जमील सोच ही रहा था कि अब प्रोग्राम क्या होना चाहिए कि नटवर ने टैक्सी रुकवाई और उतर कर चला गया क्योंकि एकदम उसे एक जरूरी काम याद आ गया था।

अब जमील अकेला था, टैक्सी तीस मील फी घण्टा की रफ्तार से चल रही थी। उस समय साढ़े सात बज चुके थे। उसने ड्रायवर से पूछा, 'यहाँ कोई भड़वा मिलेगा?'

ड्रायवर ने जवाब दिया, 'मिलेगा जनाब।'

'तो चलो उसके पास।'

ड्रायवर ने दो-तीन मोड़ घूमे और एक पहाड़ी बंगलानुमा बिल्डिंग के पास गाड़ी खड़ी कर दी; दो-तीन बार हार्न बजाया।

जमील का सिर नशे के कारण बोझिल हो रहा था आँखों के सामने धुंध-सी छाई हुई थी, उसे मालूम नहीं कैसे और किस तरह? मगर जब उसने जरा दिमाग को झटका तो उसने देखा कि वह एक पलंग पर बैठा है और उसके पास

ही एक जवान लड़की, जिसकी नाक की फुनंग पर एक छोटी सी फुन्सी थी, अपने कटे हुए बालों में कंघी कर रही थी ।

जमील ने उसे गौर से देखा। सोचने ही वाला था कि वह यहां कैसे पहुंचा मगर उसके चेतन ने उसे सलाह दी कि, 'देखो यह सब बहुत है।' जमील ने सोचा, 'यह ठीक है लेकिन फिर भी उसने अपनी जेब में हाथ डाल कर अन्दर-ही-अन्दर नोट गिन कर और पड़ी हुई तिपाई पर व्हिस्की की साबित बोतल देख कर अपना इत्मीनान कर लिया कि सब कुछ ठीक है। उसका नशा कुछ नीचे उतर गया ।

उठ कर वह उस कटे बालों वाली लड़की के पास गया, और तो कुछ समझ में न आया; मुस्करा कर उसने कहा, कहिए मिजाज कैसा है ?'

उस लड़की ने कंघी मेज पर रखी और कहा, 'कहिए आपका कैसा है ?'

ठीक हूं ।' यह कह कर उसने उस लड़की की कमर में हाथ डाला, 'आपका नाम ?'

'बता तो चुकी एक बार । आपको मेरा ख्याल है यह भी याद न रहा होगा कि आप टैक्सी में यहां आये हैं । जाने कहां-कहां घूमते रहे होंगे कि बिल अड़तीस रुपये बना जो आपने अदा किया । और एक शख्स जिसका नाम शायद नटवर था, आपने उसे बेशुमार गालियां दीं ।

जमील अपने अन्दर डूब कर सारे मामले की तह तक पहुंचने की कोशिश करने ही वाला था कि उसने सोचा था कि फिलहाल इसकी जरूरत नहीं । मैं भूल जाया करता हूं; या यूं समझिए कि मुझे बार-बार पूछने में मजा आता है । वह सिर्फ इतना याद कर सका कि उसने टैक्सी वाले का बिल जो कि अड़तीस रुपये बनाता था, अदा किया था ।

लड़की पलंग पर बैठ गई । 'मेरा नाम तारा है ।'

जमील ने उसे लिटा दिया और उससे कृत्रिम प्यार करने लगा । थोड़ी देर के बाद उसे प्यास लगी तो उसने तारा से कहा, 'दो ठण्डे सोडे और ग्लास ।'

तारा ने ये दोनों चीजें फौरन हाजिर कर दीं। जमील ने बोतल खोली; अपने लिए एक पेग डाल कर उसने दूसरा तारा के लिए डाला। फिर दोनों पीने लगे।

तीन पेग पीने के बाद जमील ने महसूस किया कि उसकी हालत बेहतर हो गई है। तारा को चूमने चाटने के बाद उसने सोचा कि अब मामला हो जाना चाहिए। 'कपड़े उतार दो।'

'सारे ?'

'हां, सारे।'

तारा ने कपड़े उतार दिये और लेट गई। जमील ने उसके नंगे शरीर को एक नजर देखा और यह राय कायम की कि अच्छा है। उसके साथ ही विचारों का एक तांता बँध गया। जमील का 'निकाह' हो चुका था; उसने अपनी पत्नी को दो तीन बार देखा था।

उसका बदन कैसा होगा ? क्या वह तारा की तरह उसके एक बार कहने पर अपने सारे कपड़े उतार कर उसके साथ लेट जायगी ? क्या वह उसके साथ ब्रांडी पियेगी ? क्या उसके बाल कटे हुए हैं ?

फिर फौरन उसका अन्त करण जागा जिसने उसे धिक्कारा। 'निकाह' का यह मतलब था कि उसकी शादी हो चुकी थी, केवल एक अवस्था शेष थी कि वह अपनी सुसराल जाये और लड़की का हाथ पकड़ कर ले आये। क्या उसके लिए यह उचित था कि एक बाजारी औरत को अपनी आगोश की शोभा बनाये।

जमील बहुत लज्जित हुआ और उसकी लज्जा के कारण उसकी आँखें मुँदना शुरू हो गई और वह सो गया। तारा भी थोड़ी देर के बाद स्वप्निल संसार में विचरने लगी।

जमील ने कई स्फुट, ऊट-पटांग सपने देखे। कोई दो घण्टे के बाद जब वह एक बहुत ही भयावना सपना देख रहा था कि वह हड़बड़ा के उठ बैठा। जब अच्छी तरह आँखें खुलीं तो उसने देखा कि वह एक अपरिचित कमरे में है और उसके साथ एक सर्वथा नग्न लड़की लेटी है। लेकिन थोड़ी देर के बाद

घटनाएं धीरे-धीरे उसके मस्तिष्क की धुंध को चीर कर प्रकट होने लगीं ।

वह खुद भी निपट नंगा था; बौखलाहट में उसने उल्टा पाजामा पहन लिया । लेकिन उसे उसका एहसास न हुआ । कुर्ता पहन कर उसने अपनी जेबें टटोलीं; नोट सबके-सब मौजूद थे । उसने सोडा खोला और एक पेग बना कर पिया । फिर उसने तारा को कंधे से झिंझोड़ा, 'उठो ।'

तारा आंखें मलती उठी । जमील ने उससे कहा, 'कपड़े पहन लो ।'

तारा ने कपड़े पहन लिए—बाहर गहरी शाम रात बनने की तैयारियां कर रही थी । जमील ने सोचा, 'अब कूच करना ही चाहिए ।' लेकिन वह तारा से पूछना चाहता था, क्योंकि बहुत सी बातें उसके दिमाग से निकल गई थीं, 'क्यों तारा, जब हम लेटे—मेरा मतलब है जब मैंने तुमसे कपड़े उतारने के लिए कहा तो उसके बाद क्या हुआ ?'

तारा ने जवाब दिया, कुछ नहीं, आपने अपने कपड़े उतारे और मेरे बाजू पर हाथ फेरते-फेरते सो गये ।'

'बस ?'

'हाँ, लेकिन सोने से पहले आप दो-तीन बार बड़बड़ाये और कहा, मैं पापी हूं, मैं पापी हूं ।' यह कह कर तारा उठी और अपने बाल संवारने लगी ।

जमील भी उठा । पाप का विचार दबाने के लिए उसने डबल पेग अपने हलक में जल्दी-जल्दी उँडेला । बोतल को कागज में लपेटा और दरवाजे की ओर बढ़ा ।

तारा ने पूछा, 'चले ?'

हाँ, फिर कभी आऊँगा ।' यह कह कर वह लोहे की पेचदार सीढ़ियों से नीचे उतर गया । बड़े बाजार की ओर उसके कदम उठने ही वाले थे कि हार्न बजा; उसने मुड़ कर देखा तो एक टैक्सी खड़ी थी । उसने कहा चलो अच्छा हुआ यहीं मिल गई; पैदल चलने की तकलीफ से बच गये ।

. . . .

उसने ड्राइवर से पूछा, 'क्यों भई, खाली है ?'

ड्राइवर ने जवाब दिया, 'खाली है का क्या मतलब ? लगी हुई है ।'

'तो फिर ········?' यह कहकर जमील मुड़ा; लेकिन ड्राइवर ने उसे पुकारा। किधर जाना है सेठ ?'

जमील ने जवाब दिया, 'कोई और टैक्सी देखता हूँ ।'

ड्राइवर बाहर निकल आया, 'मस्तक भी नहीं फिरेला है ?' यह टैक्सी तुमने ही तो ले रखी है ।'

जमील बौखला गया, 'मैंने ?'

ड्राइवर ने बड़े गँवार स्वर में उससे कहा, 'हाँ, तूने ? साला दारू पीकर सब कुछ भूल गया ?'

इस पर तू-तू मैं-मैं शुरू हुई। इधर-उधर से लोग इकट्ठे हो गये। जमील ने टैक्सी का दरवाज़ा खोला और अन्दर बैठ गया, 'चलो।'

ड्राइवर ने टैक्सी चलाई, 'किधर ?'

जमील ने कहा, 'पुलिस स्टेशन ।'

ड्राइवर ने इस पर न जाने क्या वाही-तबाही बकी। जमील सोच में पड़ गया। जो टैक्सी उसने ली थी, उसका बिल जो कि पैंतीस रुपये का था, उसने अदा कर दिया था। अब यह नई टैक्सी कहाँ से आन टपकी ? हालांकि वह नशे की हालत में था, मगर वह निश्चित रूप से कह सकता था कि यह वह टैक्सी नहीं थी और न यह वह ड्राइवर है जो उसे यहाँ लाया था।

पुलिस स्टेशन पहुंचे; जमील के कदम बहुत बुरी तरह लड़खड़ा रहे थे। सब-इन्सपेक्टर जो कि उस वक्त ड्यूटी पर था फौरन भाँप गया कि मामला क्या है। उसने जमील को कुर्सी पर बैठने के लिए कहा।

ड्राइवर ने अपनी दास्तान शुरू करदी जो बिल्कुल गलत थी। जमील निश्चय ही उसका खण्डन करता, किन्तु उसमें अधिक बोलने की हिम्मत नहीं थी। सबइन्स्पेक्टर से सम्बोधित होकर उसने कहा, 'जनाब मेरी समझ में नहीं आता यह क्या किस्सा है। जो टैक्सी मैंने ली थी, उसका किराया मैंने

अड़तीस रुपये अदा कर दिया था। अब मालूम नहीं यह कौन है और मुझसे कैसा किराया मांगता है?'

ड्राइवर ने कहा, 'हुजूर, इन्स्पेक्टर बहादुर, यह दारू पियेला है।' और सबूत के तौर पर उसने जमील की ब्रांडी की बोतल मेज पर रख दी।

जमील झुंझला गया। 'अरे भाई, कौन गूधर कहता है कि मैंने नहीं पी। सवाल तो यह है कि आप यहां से तशरीफ ले आये?'

सब-इन्स्पेक्टर शरीफ आदमी था। किराया ड्राइवर के हिसाब से बयालीस रुपये बनता था। उसने पन्द्रह रुपये में फैसला कर दिया। ड्राइवर बहुत चीखा-चिल्लाया, मगर सब-इन्स्पेक्टर ने उसे डांट-डपटकर थाने से निकलवा दिया। फिर उसने एक सिपाही से कहा कि वह दूसरी टैक्सी बुलाये, टैक्सी आई तो उसने एक सिपाही जमील के साथ कर दिया कि वह उसे घर छोड़ आये। जमील ने लड़खड़ाते स्वर में उसका बहुत-बहुत शुक्रिया अदा किया और पूछा, 'जनाब क्या यह ग्राण्ट रोड पुलिस स्टेशन है?'

सब-इन्स्पेक्टर ने जोर का कहकहा लगाया और पेट पर हाथ रखते हुए कहा, 'मिस्टर, अब साबित हो गया कि तुमने खूब पी रखी है। यह कोलाबा पुलिस स्टेशन है। जाओ अब घर जाकर सो जाओ।'

जमील घर जाकर खाना खाये और कपड़े उतारे बिना सो गया। ब्रांडी की बोतल भी उसके साथ सोती रही।

दूसरे रोज वह दस बजे के करीब उठा। जोड़-जोड़ में दर्द था; सिर में जैसे बड़े-बड़े वजनी पत्थर थे; मुंह का स्वाद खराब। उसने उठकर दो-तीन ग्लास फ्रूट-साल्ट के पिये; चार पांच प्याले चाय के। कहीं शाम को जाकर तबीयत ठीक हुई और उसने खुद को बीती हुई घटनाओं के बारे में सोचने के योग्य समझा।

बहुत लम्बी जंजीर थी; इनमें से कुछ कड़ियां तो साबुत थीं, मगर कुछ गायब। घटनाओं का सिलसिला शुरू से लेकर ग्रीन होटल और वहां से कोलाबा तक बिल्कुल साफ था। उसके बाद जब नटवर के साथ खास बांद्रे की सैर शुरू हुई थी, मामला गड़मड़ हो जाता था। चंद झलकियां दिखाई

देती थीं—बड़ी स्पष्ट, किन्तु फौरन अस्पष्ट परछाइयों का क्रम शुरू हो जाता था।

वह कैसे उस लड़की के घर पहुँचा, उसका नाम जमील की स्मृति से फिसलकर न जाने किस खड्ड में जा गिरा था। उसकी शक्ल व सूरत उसे अलबत्ता बड़ी अच्छी तरह याद थी।

वह उसके घर कैसे पहुँचा था, यह जानना बहुत महत्वपूर्ण था। यदि जमील की स्मरण शक्ति उसकी सहायता करती तो बहुत-सी चीजें साफ हो जातीं। परन्तु प्रयत्न करने पर भी वह किसी परिणाम तक न पहुँच सका।

और यह टैक्सियों का क्या सिलसिला था। उसने पहली को तो छोड़ दिया था, मगर दूसरी कहाँ से टपक पड़ी थी।

सोच-सोच कर जमील का दिमाग टुकड़े-टुकड़े हो गया। उसने महसूस किया कि जितने भारी पत्थर उसमें पड़े थे सब आपस में टकरा-टकराकर चूर हो गये हैं।

रात को उसने ब्रांडी के तीन पेग पिये, थोड़ा-सा हल्का खाना खाया और बीती हुई घटनाओं के बारे में सोचना-सोचना शुरू किया।

वह टुकड़े जो गुम हो गये थे उनकी तलाश करना अब जमील की व्यस्तता बन गया था। वह चाहता था कि जो कुछ उस दिन हुआ वह हू-बहू उसकी आँखों के सामने आ जाय और रोज-रोज की यह मगज-पच्ची दूर हो। इसके अलावा उसे इस बात का भी दुःख था कि उसका पाप अधूरा रह गया। वह सोचता था कि यह अधूरा पाप जायेगा किस खाते में? वह चाहता था कि बस एक बार उसकी भी पूर्ति हो जाय।

मगर बहुत तलाश करने के बाद वह पगडंडी बंगलों जैसा मकान जमील की आँखों से ओझल रहा, जब वह थककर हार गया तो उसने एक दिन सोचा कि यह सब ख्वाब ही तो नहीं था?

मगर ख्वाब कैसे हो सकता था? ख्वाब में आदमी इतने रुपये खर्च नहीं करता। उस रोज कम-से-कम ढाई सौ रुपये खर्च हुए थे।

पीर साहब से उसने नटवर के बारे में पूछा तो उन्होंने बताया कि वह उस रोज के बाद दूसरे दिन ही समुद्र पार कहीं चला गया है—शायद मोतियों के सिलसिले में जमील ने उस पर हजार लानतें भेजीं और अपनी तलाश शुरू कर दी।

उसने जब अपनी स्मरण शक्ति पर बहुत जोर दिया तो उसे बँगले की दीवार के साथ पीतल की एक प्लेट नजर आई उस पर कुछ लिखा था; शायद डाक्टर-डाक्टर वैराम जी···आगे न जाने क्या ?

एक दिन कोलाबा की गलियों में चलते-चलते अन्त में वह एक ऐसी गली में पहुँचा जो उसे जानी-पहचानी मालूम हुई। दोनों ओर उसी किस्म की बँगलानुमा इमारतें थीं।। हर इमारत के बाहर छोटे छोटे पीतल के बोर्ड लगे हुए थे—किसी पर चार, किसी पर पाँच, किसी पर तीन।

वह इधर-उधर गौर से देखता चला जा रहा था, मगर उसके दिमाग में वह खत घूम रहा था जो सुबह उसकी सास के यहाँ से आया था कि 'अब इन्तेजार की हद हो गई है, मैंने तारीख निश्चित कर दी है। आकर अपनी दुल्हन को ले जाओ।'

और वह इधर एक अपूर्ण पाप को पूरा करने के प्रयत्न में मारा-मारा फिर रहा था। जमील ने कहा, 'हटाओ जी इस वक्त फिरने दो मारा-मारा। एक दम उसने अपने दाहिने हाथ पीतल का छोटा-सा बोर्ड देखा। उस पर लिखा था—डाक्टर एम. वैराम जी एम. डी.।

जमील काँपने लगा। यह वही बिल्डिंग, बिल्कुल वही, वही बल खाती हुई आहनी सीढ़ियां। जमील बेधड़क ऊपर चला गया, उसके लिए अब हर चीज जानी-पहचानी थी। कारीडोर से निकल कर उसने सामने वाले दरवाजे पर दस्तक दी।

एक लड़के ने दरवाजा खोला—उसी लड़के ने जो उस रोज सोडा और बर्फ लाया था। जमील ने होंठों पर कृत्रिम मुस्कान पैदा करते हुए उससे पूछा, 'बेटा, बाई जी हैं ?'

लड़के ने 'हाँ' में सिर हिलाया, 'जी हाँ।'

'जाओ, उनसे कहो, कोई साहब मिलने आये हैं ।' जमील के स्वर में बेतकल्लुफी थी ।

लड़का दरवाजा भेड़कर अन्दर चला गया ।

थोड़ी देर बाद दरवाजा खुला और तारा आई । उसे देखते ही जमील ने पहचान लिया कि वही लड़की है । मगर अब उसकी नाक पर फुंसी नहीं थी, 'नमस्ते ।'

'नमस्ते ! कहिए, मिजाज कैसे हैं ?' यह कहकर उसने अपने कटे हुए बालों को एक हल्का-सा झटका दिया ।

जमील ने उत्तर दिया, 'अच्छे हैं ?' मैं पिछले दिनों बहुत व्यस्त रहा, इसलिए आ न सका । कहो फिर क्या इरादा है ?'

तारा ने बड़ी गम्भीरता से कहा, 'माफ कीजिए, मेरी शादी हो चुकी है ।'

जमील बौखला गया, 'शादी ? कब ?'

तारा ने उसी गम्भीरता से उत्तर दिया, 'जी आज ही सुबह । आइए मैं आपको अपने पति से मिलाऊँ ।'

जमील चकरा गया और कुछ कहे-सुने बिना खटाखट नीचे उतर गया । सामने टैक्सी खड़ी थी, जमील का दिल क्षण भर के लिए निश्चल-सा हो गया था । तेज कदम उठाता वह बड़े बाजार की तरफ निकल गया ।

अचानक जमील को जाते देखकर ड्राइवर ने जोर से कहा, 'सेठ साहब, टैक्सी ?'

जमील ने झुंझलाकर कहा, 'नहीं, कमबख्त शादी !'

महमूदा

मुस्तकीम ने महमूदा को पहली बार अपनी शादी पर देखा। आरसी मुस-हफ● की रस्म अदा हो रही थी कि अचानक उसे दो बड़ी-बड़ी, असाधारण रूप से बड़ी आँखें दिखाई दीं। वे महमूदा की आँखें थीं जो अभी तक कुँवारी थी।

मुस्तकीम औरतों और लड़कियों के झुरमुट में घिरा था। महमूदा की आँखें देखने के बाद उसे जरा अनुभव न हुआ कि आरसी मुसहफ की रस्म कब शुरू हुई और कब खत्म हुई। उसकी दुल्हन कैसी थी यह बताने के लिए उसे मौका दिया गया मगर महमूदा की आँखें उसकी दुल्हन और उसके बीच एक काले मखमली पर्दे की भांति बाधक हो गई।

उसने चोरी-चोरी कई बार महमूदा की ओर देखा; उसकी हम उम्र लड़कियाँ सब चहचहा रही थीं। मुस्तकीम से बड़े जोरों पर छेड़खानी हो रही थी, मगर वह अलग-थलग खिड़की के पास घुटनों पर ठोडी जमाये खामोश बैठी थी। उसका रंग गोरा था, बाल तख्तियों पर लिखने वाली स्याही की भांति काले तथा चमकीले थे। उसने सीधी माँग निकाल रखी थी जो उसके अण्डाकार चेहरे पर बहुत जँचती थी। मुस्तकीम का अनुमान था कि इसका कद छोटा है; अतः जब वह उठी तो उसका प्रमाण भी मिल गया।

उसका लिबास बहुत साधारण था। दुपट्टा जब उसके सिर से ढलका और फर्श तक आ पहुंचा तो मुस्तकीम ने देखा कि उसका सीना बहुत ठोस और

●. एक प्रथा जिसके अनुसार दुल्हन के अँगूठे में एक बड़े शीशे वाली अँगूठी पहनाते हैं जिसमें दूल्हा को दुल्हन की सूरत दिखाई जाती है।

मजबूत है। भरा-भरा जिस्म, सीधी नाक, चौड़ी पेशानी, छोटा-सा मुँह और आँखें—जो देखने को सबसे पहले दिखाई देती थीं।

मुस्तकीम अपनी दुल्हन को घर ले आया। दो-तीन साल बीत गये। वह खुश भी इसलिये कि उसकी पत्नी सुन्दर तथा सुघड़ थी। लेकिन वह महमूदा की आँखें न भूल सकता था। उसे ऐसा महसूस होता था कि वह उसके दिल व दिमाग पर छा गई है।

मुस्तकीम को महमूदा का नाम मालूम नहीं था। एक दिन उसने अपनी बीबी कुलसूम से यों ही पूछा, 'वह लड़की कौन थी हमारी शादी पर जब आरसी मुसहफ की रस्म अदा हो रही थी। वह एक कोने में खिड़की के साथ बैठी थी?'

कुलसूम ने जवाब दिया, 'मैं क्या कह सकती हूं? उस वक्त कई लड़कियां थीं मालूम नहीं आप किसके बारे में पूछ रहे हैं?'

मुस्तकीम ने कहा, 'वह···वह जिसकी ये बड़ी-बड़ी आंखें थीं।'

कुलसूम समझ गई, 'ओहो, आपका मतलब महमूदा से है! हां, वास्तव में उसकी आंखें बहुत बड़ी हैं लेकिन बुरी नहीं लगतीं। गरीब घराने की लड़की, बहुत कम बोलने वाली और शरीफ। कल ही उसकी शादी हुई है।'

मुस्तकीम को सहसा एक धक्का लगा, 'उसकी शादी हो गई कल?'

'हां, मैं कल वहीं तो गई थी। मैंने आपसे कहा नहीं था कि मैंने उसे एक अँगूठी दी है।'

'हाँ, हाँ मुझे याद आ गया। लेकिन मुझे यह मालूम नहीं था कि तुम जिस सहेली की शादी पर जा रही हो वही लड़की है, बड़ी-बड़ी आँखों वाली। कहाँ शादी हुई है उसकी?'

कुलसूम ने गिलोरी बनाकर अपने पति को देते हुए कहा, 'अपने अजीजों में। खाविन्द उसका रेलवे वर्कशाप में काम करता है, डेढ़ सौ रुपये माहवार तनख्वाह है। सुना है बेहद शरीफ आदमी है।'

मुस्तकीम ने गिलोरी कल्ले के नीचे दबाई, 'चलो अच्छा हो गया। लड़की भी जैसा कि तुम कहती हो शरीफ है।'

कुलसूम से न रहा गया उसे आश्चर्य हो रहा था कि उसका पति महमूदा से इतनी दिलचस्पी क्यों ले रहा है । 'ताज्जुब है कि आपने उसे सिर्फ एक नजर देखने पर भी याद रखा।'

मुस्तकीम ने कहा, 'उसकी आँखें कुछ ऐसी हैं कि आदमी उन्हें भूल नहीं सकता। क्या मैं झूठ बोल रहा हूं।'

कुलसूम दूसरा पान बना रही थी। थोड़े-से अवकाश के बाद वह अपने पति से सम्बोधित हुई, 'मैं इसके बारे में कुछ नहीं कह सकती, मुझे तो उसकी आँखों में कोई आकर्षण दिखाई नहीं देता। मर्द न जाने किन निगाहों से देखते हैं।'

मुस्तकीम ने यही उचित समझा कि इस विषय पर अब आगे बात-चीत नहीं होनी चाहिये। अतः उत्तर में वह मुस्कराकर उठा और अपने कमरे में चला गया। इतवार की छुट्टी थी सदा की भांति उसे अपनी पत्नी के साथ सैट्टिनी को देखने जाना चाहिए था मगर महमूदा का जिक्र छेड़कर उसने मस्तिष्क को बोझिल बना लिया था।

उसने आराम कुर्सी में लेटकर तिपाई पर से एक किताब उठाई जिसे वह दो बार पढ़ चुका था। उसने पहला पन्ना निकाला और पढ़ने लगा परन्तु अक्षर गड़मड होकर महमूदा की आँखें बन जाते। मुस्तकीम ने सोचा, शायद कुलसूम ठीक कहती थी कि उसे महमूदा की आँखों में कोई आकर्षण नजर नहीं आता, हो सकता है किसी और मर्द को भी नजर न आये। एक सिर्फ मैं हूं जिसे दिखाई दिया है। पर क्यों? मैंने ऐसा कोई इरादा नहीं किया था; मेरी ऐसी कोई इच्छा नहीं थी कि वे मेरे लिए आकर्षक बन जायें। एक क्षण की तो बात थी—बस मैंने एक नजर देखा और वे मेरे दिल व दिमाग पर छा गईं, इसमें न उन आँखों का दोष है, न मेरी आँखों का जिनसे मैंने उन्हें देखा।'

इसके बाद मुस्तकीम ने महमूदा के विवाह के बारे में सोचना आरम्भ किया, 'होगई उसकी शादी, चलो अच्छा हुआ। लेकिन दोस्त यह क्या बात है कि तुम्हारे दिल में हल्की-सी टीस उठी है; क्या तुम चाहते हो कि उसकी

शादी न हो ? सदा कुँवारी रहे, क्योंकि तुम्हारे दिल में उससे शादी करने की इच्छा तो कभी उत्पन्न नहीं हुई, तुमने उसके बारे में कभी एक क्षण के लिए भी नहीं सोचा फिर यह जलन कैसी ? इतनी देर तुम्हें उसे देखने का कभी विचार नहीं आया पर अब तुम क्यों उसे देखना चाहते हो। और यदि कभी उसे देख भी लो तो क्या कर लोगे ? उसे उठाकर अपनी जेब में रख लोगे ? उसकी बड़ी-बड़ी आंखें नोचकर अपने बटुवे में डाल लोगे ? बोलो ना क्या करोगे ?'

मुस्तकीम के पास इसका कोई जवाब नहीं था। असल में उसे मालूम ही नहीं था कि वह क्या चाहता है। यदि कुछ चाहता भी है तो क्यों चाहता है ?

महमूदा की शादी हो चुकी थी और वह भी केवल एक दिन पहले यानी उस समय जबकि मुस्तकीम पुस्तक पढ़ रहा था महमूदा निश्चय ही दुल्हनों के लिबास में या तो अपने मैके या अपनी ससुराल में शर्माई-लजाई बैठी थी। वह खूब शरीफ थी, उसका पति भी शरीफ था; रेलवे वर्कशाप में नौकर था और डेढ़ सौ रुपये मासिक वेतन पाता था। बड़ी खुशी की बात थी। मुस्तकीम की हार्दिक इच्छा थी कि वह खुश रहे—आजीवन सुखी रहे। लेकिन उसके दिल में जाने क्यों एक टीस-सी उठती जो उसे व्याकुल कर देती थी।

मुस्तकीम अन्त में इस नतीजे पर पहुंचा कि यह सब बकवास है। उसे महमूदा के बारे में बिलकुल कुछ नहीं सोचना चाहिये। दो वर्ष व्यतीत हो गये; इस दौरान में उसे महमूदा के बारे से कुछ मालूम न हुआ और न उसने कुछ मालूम करने का प्रयत्न किया यद्यपि वह और उसका पति बंबई में डोंगरी की एक गली में रहते थे। मुस्तकीम हालांकि डोंगरी से बहुत दूर माहिम में रहता था लेकिन अगर वह चाहता तो बड़ी आसानी से महमूदा को देख सकता था।

एक दिन कुलसूम ही ने उससे कहा, 'आपकी उस बड़ी-बड़ी आंखों वाली महमूदा के नसीब बहुत बुरे निकले।'

चौंककर मुस्तकीम ने चिंतित स्वर में पूछा, क्यों क्या हुआ ?'

कुलसूम ने गिलोरी बनाते हुए कहा, 'उसका खाविन्द एकदम मौलवी हो गया है।'

[illegible] क्या हुआ ?'

'आप सुन तो लीजिए। वह हर वक्त मजहब की बातें करता-रहता है लेकिन वही ऊटपटांग क़िस्म की। वजीफे करता है, चिल्ले काटता है और महमूदा को मजबूर करता है कि वह भी ऐसा ही करे। फकीरों में घण्टों बैठा रहता है—घरबार से बिल्कुल गाफिल हो गया है। दाढ़ी बढ़ाई है, हाथ में हर वक्त तस्बीह होती है. काम पर कभी जाता है कभी नहीं जाता। कई-कई दिन गायब रहता है; वह बेचारी कुढ़ती रहती है। घर में खाने को कुछ होता नहीं इसलिए फाके करती है और जब उससे शिकायत करती है तो आगे से जवाब यह मिलता है—'फाकाकशी अल्लाह तबारक ताला को बहुत प्यारी है।' कुलसूम ने सब कुछ एक सांस में कहा।

मुस्तकीम ने पनदानियों से थोड़ी-सी छालियाँ उठाकर मुँह में डालीं, 'कहीं दिमाग तो नहीं चल गया उसका ?'

कुलसूम ने कहा, 'महमूदा का तो यही खयाल है। खयाल क्या उसे तो यकीन है। गले में बड़े-बड़े मनकों वाली माला डाले फिरता है; कभी-कभी सफेद रंग का चोला भी पहनता है।'

मुस्तकीम गिलोरी लेकर अपने कमरे में चला गया और आराम कुर्सी में लेटकर सोचने लगा, 'यह क्या हो गया. ऐसा पति तो बड़ा दुखदाई होता है। गरीब किस मुसीबत में फँस गई। मेरा खयाल है कि पागलपन के कीटाणु उसके पति के अन्दर शुरू ही से मौजूद होंगे जो अब एकदम उभर आये हैं। लेकिन सवाल यह है कि अब महमूदा क्या करेगी। उसका तो यहाँ कोई रिश्तेदार भी नहीं। कुछ शादी करने लाहौर से आये थे और वापस चले गये थे। क्या महमूदा ने अपने माँ-बाप को लिखा होगा ? नहीं, नहीं उसके मां-बाप तो जैसा कि कुलसूम ने एक बार कहा था उसके बचपन ही में मर गये थे; शादी उसके चचा ने की थी। डोंगरी, डोंगरी में शायद उसकी जान-पहचान का कोई हो। लेकिन नहीं अगर जान-पहचान का कोई होता तो वह फाके क्यों करती ? कुलसूम क्यों न उसे अपने यहाँ ले आये। पागल हुये हो मुस्तकीम, होश के नाखून लो।'

मुस्तकीम ने एक बार फिर इरादा किया कि वह महमूदा के बारे में नहीं

सोचेगा, इसलिए कि उससे कोई लाभ नहीं होगा बेकार मगजपाशी थी।

बहुत दिनों के बाद कुलसूम ने एक रोज उसे बताया कि महमूदा का पति जिसका नाम जमील था करीब-करीब पागल हो गया है।

मुस्तक़ीम ने पूछा, 'क्या मतलब ?'

कुलसूम ने जवाब दिया, 'मतलब यह कि वह अब रात को एक सेकण्ड के लिये नहीं सोता। जहां खड़ा है बस वहीं घण्टों खामोश खड़ा रहता है। महमूदा गरीब रोती रहती है। मैं कल उसके पास गई थी। बेचारी को कई दिन का फाका था। मैं बीस रुपये दे आई क्योंकि मेरे पास इतने ही थे।'

मुस्तक़ीम ने कहा, 'बहुत अच्छा किया तुमने। जब तक उसका पति ठीक नहीं होता कुछ-न-कुछ दे आया करो ताकि गरीब को फाकों की नौबत तो न आये।'

कुलसुम ने कुछ सोच-विचार के बाद कुछ विचित्र स्वर में कहा, 'असल में बात कुछ और है।'

'क्या मतलब ?'

'महमूदा का खयाल है कि जमील ने महज एक ढोंग रचा रखा है। वह पागल-वागल हरगिज नहीं। बात यह है कि वह...'

'वह क्या ?'

'वह औरत के काबिल नहीं।......यह कमजोरी दूर करने के लिए वह फकीरों और सन्यासियों से टोने-टोटके लेता रहता है।'

मुस्तक़ीम ने कहा, 'यह बात तो पागल होने से ज्यादा अफसोसनाक है। महमूदा के लिये तो यह समझो कि घरेलू जिन्दगी एक खिला (शून्य) बनकर रह गई है।'

मुस्तक़ीम अपने कमरे में चला गया और महमूदा की दुर्दशा के बारे में सोचने लगा। ऐसी स्त्री का जीवन क्या होगा जिसका पति सर्वथा निष्क्रिय है। कितनी उमंगें होंगी उसके हृदय में; उसके यौवन ने कितने कँपकँपा देने वाले स्वप्न देखे होंगे। उसने अपनी सहेलियों से क्या कुछ नहीं सुना होगा ? कितनी निराशा हुई होगी बेचारी को जब उसे चारों ओर शून्य-ही-शून्य दिखाई

दिया होगा ? उसने अपनी गोद हरी करने के बारे में भी कई बार सोचा होगा। जब डोंगरी में किसी के यहाँ बच्चा होने की सूचना उसे मिली होगी तो बेचारी के दिल पर एक घूँसा-सा लगा होगा। अब क्या करेगी ? ऐसा न हो कहीं आत्महत्या कर ले। दो वर्ष तक उसने किसी को यह राज न बताया परन्तु उसका सीना फट पड़ा। खुदा उसके हाल पर रहम करे।

बहुत दिन गुजर गये। मुस्तकीम और कुलसूम छुट्टियों में पंचगनी चले गये। वहाँ ढाई महीने रहे। वापस आये तो एक मास के पश्चात कुलसूम के यहाँ लड़का पैदा हुआ; वह महमूदा के घर न जा सकी। लेकिन एक दिन उसकी एक सहेली जो महमूदा को जानती थी उसे बधाई देने आयी। उसने बातों-बातों में कुलसूम से कहा, 'कुछ सुना तुमने ? वह महमूदा है ना बड़ी-बड़ी आँखों वाली ?'

कुलसूम ने कहा, 'हाँ हाँ, डोंगरी में रहती है।'

'साविन्द की बेपरवाही ने गरीब को बुरी बातों पर मजबूर कर दिया है।' कुलसूम की सहेली की आवाज में दर्द था।

कुलसूम ने बड़े दुःख भरे स्वर में पूछा, कैसी बुरी बातों पर ?'

'अब उसके यहाँ गैर मर्दों का आना-जाना हो गया है।'

'झूठ !' कुलसूम का दिल धक-धक करने लगा।

कुलसूम की सहेली ने कहा, 'नहीं कुलसूम, मैं झूठ नहीं कहती। मैं परसों उससे मिलने गई थी, दरवाजे पर दस्तक देने ही वाली थी कि अंदर से एक नौजवान मर्द जो मेमन मालूम होता था बाहर निकला और तेजी से नीचे उतर गया। मैंने तब उससे मिलना मुनासिब न समझा और वापस चली आई।'

'यह तुमने बहुत बुरी खबर सुनाई। खुदा उसे गुनाह के रास्ते से बचाये रखे। हो सकता है वह मेमन उसके साविन्द का का कोई दोस्त हो;' कुलसूम ने खुद को धोखा देते हुए कहा।

उसकी सहेली मुस्कराई, 'दोस्त चोरों की तरह दरवाजा खोलकर भागा नहीं करते।'

कुलसूम ने अपने पति से वात की तो उसे वहुत दुःख हुआ। वह कभी नहीं रोया था लेकिन कुलसूम ने जब उसे यह दर्दनाक वात वताई कि महमूदा पाप-मार्ग पर जा रही है तो उसकी आंखों में आंसू आ गये। उसने उसी समय निश्चय कर लिया कि महमूदा उनके यहां रहेगी। अतः उसने अपनी पत्नी से कहा, 'यह वड़ी भयानक वात है। तुम ऐसा करो, अभी जाओ और महमूदा को यहां ले आओ।'

कुलसूम ने वड़े रूखेपन से कहा, 'मैं उसे अपने घर में नहीं रख सकती।'

'क्यों?' मुस्तक़ीम के स्वर में विस्मय था।

'वस मेरी मर्जी। वह मेरे घर में क्यों रहे? इसलिए कि आपको उसकी आंखें पसंद हैं?'-कुलसूम के वोलने का ढंग वहुत विषैला और व्यंग्यपूर्ण था।

मुस्तक़ीम को वहुत क्रोध आया, किन्तु वह उसे पी गया। कुलसूम से वहस करना व्यर्थ था। अव केवल यही हो सकता था कि वह कुलसूम को निकाल कर महमूदा को ले आये। पर वह ऐसा क़दम उठाने के वारे में सोच ही नहीं सकता था। मुस्तक़ीम की नियत विल्कुल नेक थी और उसे खुद इसका एह-सास था। असल में उसने किसी गंदे दृष्टिकोण से महमूदा को देखा ही नहीं था। हाँ उसकी आँखें उसे जरूर पसन्द थीं, इतनी कि वह वयान नहीं कर सकता था।

वह पाप के मार्ग पर अग्रसर हो चुकी थी। अभी उसने सिर्फ कुछ क़दम उठाये थे; उसे विनाश के गड्ढे से वचाया जा सकता था। मुस्तक़ीम ने कभी नमाज नहीं पढ़ी थी, कभी रोजा नहीं रखा था, कभी खैरात नहीं दी थी। खुदा ने उसे कितना अच्छा मौका दिया था कि वह महमूदा को गुनाह के रास्ते पर से घसीट कर ले आये और तलाक़ वगैरह दिलवाकर उसकी किसी और से शादी कर दे। मगर वह यह सवाव का काम नहीं कर सकता था, इसलिए कि वह अपनी वीवी का दवेल था।

वहुत देर तक मुस्तक़ीम का अन्तःकरण उसे झिड़कता रहा। एक-दो वार उसने यत्न किया कि उसकी पत्नी सहमत हो जाय, पर जैसा कि मुस्तक़ीम को मालूम था ऐसे प्रयत्न निरर्थक थे।

मुस्तकीम का विचार था कि और कुछ नहीं तो कुलसूम महमूदा से मिलने जरूर जायेगी। मगर उसे निराशा हुई। कुलसूम ने उस रोज के बाद महमूदा का नाम तक न लिया।

अब क्या हो सकता था, मुस्तक़ीम खामोश रहा।

लगभग दो वर्ष बीत गये। एक दिन घर से निकलकर मुस्तक़ीम ऐसे ही दिल बहलाने के लिए फुटपाथ पर चहल-कदमी कर रहा था कि उसने क़साइयों की बिल्डिंग की ग्राउण्ड फ्लोर की खोली के बाहर खड़े पर महमूदा की आँखों की झलक देखी। मुस्तकीम दो क़दम आगे निकल गया था; फौरन मुड़कर उसने गौर से देखा—महमूदा ही थी। वही बड़ी-बड़ी आँखें थी, वह एक यहूदन के साथ जो उस खोली में रहती थी, बातें करने में व्यस्त थी।

इस यहूदन को सारा माहिम जानता था, अधेड़ उम्र की औरत थी। उसका काम ऐयाश मर्दों के लिए जवान लड़कियाँ उपलब्ध करना था। उसकी अपनी दो जवान लड़कियां थी जिनसे वह पेशा कराती थी। मुस्तकीम ने जब महमूदा का चेहरा बड़े ही बेहूदा तरीके से मेकअप किये हुए देखा तो वह लरज उठा। अधिक देर तक यह दुखद दृश्य देखने की शक्ति उसमें न थी; वहाँ से फौरन चल दिया।

घर पहुंचकर उसने कुलसूम से इस घटना का जिक्र न किया, क्योंकि अब जरूरत ही नहीं रही थी। महमूदा अब पूर्णतया शरीर बेचने वाली औरत बन चुकी थी। मुस्तक़ीम के सामने जब भी उसका बेहूदा, कामोत्तेजक रूप से मेकअप किया हुआ चेहरा आता तो उसकी आंखों में आंसू आ जाते। उसका अन्तःकरण उससे कहता, 'मुस्तकीम, जो कुछ तुमने देखा है, उसके कारण तुम हो। क्या हुआ था यदि तुम अपनी बीवी की कुछ दिनों की नाराजगी बरदाश्त कर लेते। ज्यादा-से-ज्यादा इस घर में वह मैके चली जाती। मगर महमूदा की जिन्दगी उस गंदगी से तो बच जाती जिसमें वह इस समय धँसी हुई है। क्या तुम्हारी नियत नेक नहीं थी? अगर तुम सच्चाई पर थे और सच्चाई पर रहते तो कुलसूम एक-न-एक दिन अपने आप ठीक हो जाती। तुमने बड़ा जुल्म

लिया, बहुत बड़ा पाप किया ।'

मुस्तक़ीम अब क्या कर सकता था ? कुछ भी नहीं । पानी सिर से गुजर चुका था । चिड़ियां सारा खेत चुग गई होंगी । अब कुछ नहीं हो सकता था । मरते हुए रोगी को अन्तिम समय आक्सीजन सुंघाने वाली बात थी ।

थोड़े दिनों के बाद बम्बई का वातावरण साम्प्रदायिक दंगों के कारण बड़ा भयंकर हो गया था । बंटवारे के कारण देश के चारों ओर विनाश और लूट का बाजार गर्म था । लोग धड़ाधड़ हिन्दुस्तान छोड़कर पाकिस्तान जा रहे थे । गुलरुख ने मुस्तक़ीम को मजबूर किया कि वह भी बम्बई छोड़ दे । अतः जो पहला जहाज मिला, उसकी सीटें बुक कराके मियां-बीवी कराची पहुंच गये और छोटा-मोटा कारोबार शुरू कर दिया ।

ढाई बरस बाद इस कारोबार में उन्नति होने लगी । इसलिए मस्तक़ीम ने नौकरी का विचार त्याग दिया । एक रोज शाम को दूकान से उठकर वह टहलता-टहलता सदर जा निकला । जी चाहा कि एक पान खाये; बीस-तीस क़दम के फासले पर उसे एक दूकान नजर आई जिस पर काफी भीड़ थी । आगे बढ़कर वह दूकान के पास पहुंचा; क्या देखता है कि महमूदा बैठी पान लगा रही है; झुलसे हुए चेहरे पर उसी क़िस्म का भद्दा मेकअप है, लोग उससे गंदे-गंदे मजाक कर रहे हैं और वह हँस रही है । मुस्तक़ीम के होश व हवास गायब हो गये । क़रीब था कि वहां से भाग जाये कि महमूदा ने उसे पुकारा, 'इधर आओ दूल्हा मियाँ, तुम्हें एक फस्ट क्लास पान खिलायें । हम तुम्हारी शादी में शरीक थे ।'

मुस्तक़ीम बिल्कुल पथरा गया ।

शांति

दोनों पैरीसियन डेयरी के बारह बड़े धारियों वाले छाते के नीचे कुर्सियों पर बैठे चाय पी रहे थे। उधर समुद्र था जिसकी लहरों की गुनगुनाहट सुनाई दे रही थी। चाय बहुत गर्म थी, इसलिए दोनों अहिस्ता-अहिस्ता घूंट भर रहे थे। सामने मोटी भँवों वाली यहूदन की जानी-पहचानी सूरत थी, वह बड़ा गोल-मटोल चेहरा, तीखी नाक, मोटे-मोटे बहुत ही ज्यादा सुर्खी लगे होंठ। शाम को हमेशा दरवाजे के साथ वाली कुर्सी पर बैठी दिखाई देती थी; मक्बूल ने एक नजर उस पर डाली और बलराज से कहा, 'बैठी है जाल फैंकने।'

बलराज मोटी भँवों की ओर देखे बिना बोला, 'फँस जायगी कोई-न-कोई मछली।'

मक्बूल ने एक पेस्टरी मुँह में डाली, 'यह कारोबार भी अजीब कारोबार है। कोई दूकान खोल कर बैठती है, कोई चल-फिर कर सौदा बेचती है और कोई इस तरह रेस्तोरानों में ग्राहक के इंतजार में बैठी रहती है। शरीर बेचना भी एक आर्ट है और मेरा खयाल है कि मुश्किल आर्ट है। यह मोटी भँवों वाली कैसे ग्राहक का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करती है? कैसे किसी मर्द को यह बताती होगी कि वह बिकाऊ है?'

बलराज मुस्कराया, 'किसी दिन वक्त निकालकर कुछ देर यहाँ बैठो। तुम्हें मालूम हो जायगा कि निगाहों-ही-निगाहों में क्योंकर सौदे होते हैं। इस जिन्स का भाव कैसे चुकता है?' यह कह कर उसने एकदम मक्बूल का हाथ पकड़ा, 'उधर देखो उधर।'

मकबूल ने मोटी मक्खन की तरफ देखा, बलराज ने उसका हाथ दबाया, 'नहीं यार उधर कोने के छाते के नीचे देखो।'

मकबूल ने उधर देखा, एक दुबली-पतली, गोरी-चिट्टी लड़की कुर्सी पर बैठ रही थी—बाल कटे हुए थे, नाक-नक्शा ठीक था, हल्के पीले रंग की जार्जट की साड़ी पहने हुए थी। मकबूल ने बलराज से पूछा, 'कौन है यह लड़की ?'

बलराज ने उस लड़की की ओर देखते हुए जवाब दिया, 'अमाँ वही है जिसके बारे में तुमसे कहा था कि बड़ी अजीबो-गरीब लड़की है।'

मकबूल ने कुछ देर सोचा फिर कहा, 'कौन-सी यार ? तुम तो जिस लड़की से भी मिलते हो अजीबो-गरीब ही होती है।'

बलराज मुस्कराया, 'यह बड़ी खासुल-खास है। जरा गौर से देखो।'

मकबूल ने गौर से देखा। कटे हुए बालों का रंग भूसला था; हल्के बसंती रंग की साड़ी के नीचे छोटी आस्तीनों वाला ब्लाउज, पतली-पतली बहुत ही गोरी बाहें। लड़की ने अपनी गर्दन मोड़ी तो मकबूल ने देखा कि उसके बारीक होंठों पर सुर्खी फैली हुई-सी थी। 'मैं और कुछ तो नहीं कह सकता मगर तुम्हारी इस अजीबो-गरीब लड़की को सुर्खी इस्तेमाल करने का सलीका नहीं है। अब और गौर से देखा है तो साड़ी की पहनावट में भी खामियाँ नजर आई हैं; बाल सँवारने का अन्दाज भी सुथरा नहीं।'

बलराज हँसा, 'तुम सिर्फ खामियाँ ही देखते हो, अच्छाइयों पर तुम्हारी निगाह कभी नहीं पड़ती।'

'मकबूल ने कहा, जो अच्छाइयाँ हैं वह बयान फर्मा दीजिए। लेकिन पहले यह बता दीजिए कि आप उस लड़की को व्यक्तिगत रूप से जानते हैं या...'

लड़की ने जब बलराज को देखा तो मुस्कराई। मकबूल रुक गया, मुझे जवाब मिल गया। अब आप देवी जी की खूबियां बता दीजिए।'

'सबसे पहली खूबी इस लड़की में यह है कि बहुत स्पष्टवादी है। कभी झूठ नहीं बोलती। जो नियम उसने अपने लिए बना रखे हैं उनका बड़ी

नियमितता से पालन करती है पर्सनल हाइजिन का बहुत खयाल रखती है; मुहब्बत-वुहब्बत की कायल नहीं—इस मामले में दिल उसका बर्फ ।'

बलराज ने चाय का अंतिम घूंट पिया. 'कहिए क्या खयाल है ?'

मकबूल ने लड़की को एक नजर देखा, 'जो खूबियाँ तुमने बताई हैं एक ऐसी औरत में नहीं होनी चाहियें जिसके मर्द सिर्फ इस खयाल से आते हैं कि वह उनसे वास्तविक नहीं तो कृत्रिम प्रेम अवश्य करेगी। खुदफरेबी में अगर यह लड़की किसी मर्द की मदद नहीं करती तो मैं समझता हूं बड़ी बेवकूफ है।'

यही मैंने सोचा था। मैं तुम्हें क्या बताऊँ वह रूखेपन की हद तक स्पष्ट-वादी है। उससे बातें करो तो कई बार धक्के-से लगते हैं। 'एक घंटा हो गया तुमने कोई काम की बात नहीं की, मैं चली।' और यह जा वह जा। तुम्हारे मुँह से शराब की बू आती है, जाओ चले जाओ। साड़ी को हाथ मत लगाओ, मैली हो जायगी।' यह कहकर बलराज ने सिगरेट सुलगाया। 'अजीबो-गरीब लड़की है; पहली दफा जब उससे मुलाकात हुई तो मैं बाईं गॉड चकरा गया। छूटते ही मुझसे कहा, 'फिफ्टी में एक पैसा कम नहीं होगा। जेब में है तो चलो वर्ना मुझे और काम है।'

मकबूल ने पूछा, नाम क्या है उसका ?'

'शांति बताया उसने, कश्मीरन है।'

मकबूल भी कश्मीरी था, चौंक पड़ा, 'कश्मीरन !'

'तुम्हारी हमवतन !'

मकबूल ने लड़की की ओर देखा। नाक-नक्शा साफ कश्मीरियों का था। 'यहाँ कैसे आई ?'

'मालूम नहीं।'

'कोई रिश्तेदार है उसका ?' मकबूल लड़की में दिलचस्पी लेने लगा।

'वहाँ कश्मीर में कोई हो तो मैं कह नहीं सकता, यहाँ बम्बई में अकेली रहती है।' बलराज ने सिगरेट ऐश्ट्रे में दबाया, 'हार्नबी रोड पर एक होटल है। वहा उसने एक कमरा किराये पर ले रखा है। यह मुझे एक दिन यों ही सयोग से मालूम हो गया, वर्ना वह अपने ठिकाने का पता किसी को नहीं देती।

जिससे मिलना होता है वहीं पैसेन्जिगन टैक्सी में चला आता है। शाम को पूरे पांच बजे आती है यहां।'

मकबूल कुछ देर खामोश रहा। फिर बैरे को इशारे से बुलाया और उससे बिल लाने के लिए कहा। इस दौरान में एक खुशपोश नौजवान आया और उस लड़की के पास वाली कुर्सी पर बैठ गया। दोनों बातें करने लगे। मकबूल बलराज से सम्बोधित हुआ, उससे कभी मुलाकात करनी चाहिए।'

बलराज मुस्कराया, जरूर-जरूर, लेकिन इस वक्त नहीं, व्यस्त है। कभी आ जाना शाम को यहां और साथ बैठ जाना।'

मकबूल ने बिल चुकाया; दोनों दोस्त उठकर चले गये।

दूसरे दिन मकबूल अकेला आया और चाय का आर्डर देकर बैठ गया। ठीक पांच बजे वह लड़की बस से उतरी और पर्स हाथ में लटकाये मकबूल के पास से गुजरी। चाल भद्दी थी; जब वह कुछ दूर कुर्सी पर बैठ गई तो मकबूल ने सोचा—'इसमें कामोत्तेजना तो नाम को भी नहीं। आश्चर्य है इसका कारोबार किस प्रकार चलता है। लिपस्टिक कैसे बेहूदा ढंग से इस्तेमाल की है इसने? साड़ी की पहनावट आज भी खामियों से भरी है।'

फिर उसने सोचा कि उससे कैसे मिले। उसकी चाय मेज पर आ चुकी थी, वर्ना उठकर वह उस लड़की के पास जा बैठता। उसने चाय पीना शुरू कर दी। इस दौरान में उसने एक हल्का-सा इशारा किया। लड़की ने देखा; कुछ संकोच के पश्चात् उठी और मकबूल के सामने वाली कुर्सी पर बैठ गई। मकबूल पहले तो कुछ घबराया, लेकिन फौरन ही सँभलकर लड़की से सम्बोधित हुआ, 'चाय शौक फर्मायेंगी आप?'

'नहीं।'

उसके जवाबों के इस संक्षेप में रूक्षता थी। मकबूल ने कुछ देर खामोश रहने के बाद कहा, 'कश्मीरियों को तो चाय का बड़ा शौक होता है।'

लड़की ने बड़े रूखे ढंग से पूछा, 'तुम चलना चाहते हो मेरे साथ?'

मकबूल को जैसे किसी ने औंधे मुँह गिरा दिया। घबराहट में वह केवल इतना कह सका, 'हाँ।'

लड़की ने कहा, फिफ्टी रुपीज़—बस और नो ?'

यह दूसरा रेला था, मगर मकबूल ने कदम जमा लिये। 'चलिये।'

मकबूल ने चाय का बिल अदा किया। दोनों उठकर टैक्सी स्टैण्ड की ओर चले। रास्ते मे उसने कोई बात नहीं की, लड़की भी खामोश रही। टैक्सी में बैठे तो उसने मकबूल से पूछा, कहाँ जायेगा तुम ?'

मकबूल ने जवाब दिया, 'जहां तुम ले जाओगी ?'

'हम कुछ नहीं जानता, तुम बोलो किधर जायेगा ?'

मकबूल को कोई और जवाब न सूझा तो कहा, 'हम कुछ नहीं जानता।'

लड़की ने टैक्सी का दरवाजा खोलने के लिए हाथ बढ़ाया, तुम कैसा आदमी है, खाली पीली जोक करता है।'

मकबूल ने उसका हाथ पकड़ लिया, 'मैं मजाक नहीं करता। मुझे तुमसे सिर्फ बातें करनी हैं।'

वह बिगड़कर बोली, 'क्या ? तुम तो बोला था फिफ्टी रुपीज बस ?'

मकबूल ने जेब में हाथ डाला और दस-दस के पांच नोट निकाल कर उसकी तरफ बढ़ा दिये। 'यह लीजिए, घबराती क्यों हैं ?'

उसने नोट ले लिये, 'तुम जायेगा कहाँ ?'

मकबूल ने कहा, 'तुम्हारे घर।'

'नहीं।'

'क्यों नहीं ?'

'तुमको बोला है नहीं। उधर ऐसी बात नहीं होगी।'

मकबूल मुस्कराया, 'ठीक है ऐसी बात उधर नहीं होगी।'

वह कुछ चकित-सी हुई। 'तुम कैसा आदमी है ?'

'जैसा मैं हूं, तुमने बोला फिफ्टी रुपीज बस कि नो। मैंने कहा बस और नोट तुम्हारे हवाले कर दिये। तुमने बोला उधर ऐसी बात नहीं होगा; मैंने कहा बिल्कुल नहीं होगी। अब और क्या कहती हो ?'

लड़की सोचने लगी। मकबूल मुस्कराया, 'देखो शांति, बात यह है—कल तुम्हें देखा; एक दोस्त ने तुम्हारी कुछ बातें सुनाईं, मुझे पसंद आईं। आज

मैंने तुम्हें पकड़ लिया। अब तुम्हारे घर चलते हैं, वहां तुम से कुछ देर बातें करूंगा और चला जाऊंगा। क्या तुम्हें यह मंजूर नहीं ?'

'नहीं, यह लो अपने फिफ्टी रुपीज।' लड़की के चेहरे पर झुंझलाहट थी।

'तुम्हें बस फिफ्टी रुपीज की पड़ी है। रुपये के अलावा भी दुनिया में और बहुत सी चीजें हैं। चलो ड्राइवर को अपना एड्रेस बताओ। मैं शरीफ आदमी हूं तुम्हारे साथ कोई धोखा नहीं करूंगा।'

मकबूल की बातों में वास्तविकता थी। लड़की उससे प्रभावित हुई। उसने कुछ संकोच के बाद कहा, 'चलो ड्रायवर झागंवी रोड।'

टैक्सी चली तो उसने नोट मकबूल की जेब में डाल दिये।' ये मैं नहीं लूंगी।'

मकबूल ने जिद न की। 'तुम्हारी मर्जी।'

टैक्सी एक पांच मंजिला इमारत के सामने रुकी। पहली और दूसरी मंजिल पर गसासखाने थे; तीसरी, चौथी और पांचवीं मंजिल होटल के लिए सुरक्षित थी। बड़ी संकीर्ण तथा अंधियारी जगह थी। चौथी मंजिल पर सीढ़ियों के सामने वाला कमरा शांति का था। उसने पर्स से चाबी निकाल कर दरवाजा खोला। बहुत कम सामान था—लोहे का एक पलंग जिस पर उजली-सी चादर बिछी थी। कोने में एक ड्रेसिंग टेबल, एक स्टूल जिस पर टेबल फैन; और चार ट्रंक थे जो पलग के नीचे रखे थे।

मकबूल कमरे की सफाई से बहुत प्रभावित हुआ। हर चीज साफ-सुथरी थी। तकिये के गिलाफ आम तौर पर मैले होते हैं, मगर उसके दोनों तकियों पर बेदाग गिलाफ चढ़े हुए थे। मकबूल पलंग पर बैठने लगा तो शांति ने उसे रोका, 'नहीं, इधर बैठने का इजाजत नहीं। हम किसी को अपने बिस्तर पर नहीं बैठने देता। कुर्सी पर बैठो।' यह कहकर वह खुद पलंग पर बैठ गई। मकबूल मुस्कराकर कुर्सी पर टिक गया।

शांति ने अपना पर्स तकिये के नीचे रखा और मकबूल से पूछा :

'बोलो क्या बातें करना चाहते हो ?'

मक़बूल ने शांति की तरफ ग़ौर से देखा और कहा, 'पहली बात तो यह है कि तुम्हें होंठों पर लिपस्टिक लगाना बिल्कुल नहीं आती।'

शांति ने बुरा न माना; सिर्फ इतना कहा, 'मुझे मालूम है।'

'उठो मुझे लिपस्टिक दो। मैं तुम्हें सिखाता हूँ।' यह कहकर मकबूल ने अपना रूमाल निकाला।

शांति ने उससे कहा, 'ड्रेसिंग टेबल पर पड़ी है, उठा लो।'

मकबूल ने लिपस्टिक उठाई; उसे खोलकर देखा, 'इधर आओ मैं तुम्हारे होंठ पोंछूँ।'

'तुम्हारे रूमाल से नहीं मेरा लो।' यह कहकर उसने ट्रंक खोला और एक धुला रूमाल मकबूल को दिया।

मकबूल ने उसके होंठ पोंछे। बड़ी नफ़ासत से नई सुर्खी उन पर लगाई। फिर कंघी से उसके बाल ठीक किये और कहा, 'लो अब आईने में देखो।'

शांति उठकर ड्रेसिंग टेबल के सामने खड़ी हो गई। बड़े ग़ौर से उसने अपने होंठो और बालों को देखा और पसन्दीदा नजरों से वह तब्दीली महसूस की और पलटकर मकबूल से सिर्फ इतना कहा, 'अब ठीक है?'

फिर पलंग पर बैठकर पूछा, 'तुम्हारा कोई बीवी है?'

मकबूल ने जवाब दिया, 'नहीं।'

कुछ देर खामोशी रही। मकबूल चाहता था बातें हों, इसलिए उसने बात छेड़ी। 'इतना तो मुझे मालूम है कि तुम कश्मीर की रहने वाली हो। तुम्हारा नाम शांति है, यहीं रहती हो। यह बताओ कि क्रिप्टो क्वीन का मामला क्यों शुरू किया?'

शांति ने बेतकल्लुफ़ी से जवाब दिया, 'मेरा फादर श्रीनगर में डाक्टर है। मैं वहां हास्पिटल में नर्स थी। एक लड़के ने मुझे खराब कर दिया। मैं भागकर इधर को आ गई। यहां हमको एक आदमी मिला, वह हमको क्रिप्टो क्वीन दिया। बोला, 'हमारे साथ चलो। हम गया, बस काम चालू हो गया।

हम यहाँ होटल में आ गया। पर हम इधर किसी से बात नहीं करता—सब रण्डी लोग हैं, हम किसी को इधर आने नहीं देते।'

मकबूल ने कुरेद कुरेद कर सारी घटनाएँ मालूम करना उचित न समझा। कुछ और बातें कीं जिनसे उसे पता चला कि शांति को वासना से कोई रुचि नहीं थी। जब इसका ज़िक्र आया, तो उसने बुरा-सा मुँह बनाकर कहा, 'आई डोण्ट लाइक। इट्स बैड।'

उसके नजदीक फिज़टी कर्पोज का मामला एक कारोबारी मामला था। श्रीनगर के अस्पताल में जब किसी लड़के ने उसे खराब किया तो जाते समय उसे दस रुपये देना चाहे। शांति को बहुत गुस्सा आया। उसने नोट फाड़ दिया। इस घटना का उसके हृदय पर यह प्रभाव हुआ कि उसने नियमित रूप से यह कारोबार शुरू कर दिया। पचास रुपये फीस खुद-ब-खुद मुकर्रर हो गई। अब आनन्द का प्रश्न ही नहीं उठता था, क्योंकि नर्स रह चुकी थी, इसलिए बहुत सावधान रहती थी।

एक वर्ष हो गया था, उसे बम्बई आये हुए। इस दौरान में उसने दस हज़ार रुपये बचा लिये होते, मगर उसे रेस खेलने की लत पड़ गई। पिछली रेसों पर उसके पाँच हज़ार रुपये उड़ गये। लेकिन उसे विश्वास था कि वह नई रेसों में जरूर जीतेगी।

'हम अपना लॉस पूरा कर लेगा।'

उसके पास कौड़ी-कौड़ी का हिसाब मौजूद था। सौ रुपये रोजाना लेती थी जो फौरन बैंक में जमा करा दिये जाते थे। सौ से ज्यादा वह नहीं कमाना चाहती थी। उसे अपने स्वास्थ्य का बड़ा ख्याल था।

दो घण्टे गुजर गये तो उसने अपनी घड़ी देखी और मकबूल से कहा, 'अब तुम जाओ। हम खाना खायेगा और सो जायेगा।'

मकबूल उठकर जाने लगा तो उसने कहा, 'बातें करने आओ तो सुबह के टाइम आओ। शाम के टाइम हमारा नुकसान होता है।

मकबूल ने 'अच्छा' कहा और चल दिया।

दूसरे दिन सुबह दस बजे के करीब मकबूल शांति के पास पहुँचा। उसका खयाल था कि वह उसका आना पसंद न करेगी; लेकिन उसने कोई नागवारी जाहिर न की। मकबूल देर तक उसके पास बैठा रहा। इस दौरान में शांति को सही ढंग से साड़ी पहननी सिखाई। लड़की बुद्धिमान थी जल्दी सीख गई।

कपड़े उसके पास काफी तादाद में और अच्छे थे। वे सब-के सब उसने मकबूल को दिखाये। उसमें बचपन था न बुढ़ापा, जवानी भी नहीं थी। वह जैसे कुछ बनते-बनते एक दम रुक गई थी। एक ऐसे स्थान पर ठहर गई थी जिसकी जलवायु और मौसम का निश्चय नहीं हो सकता। वह खूबसूरत थी न बदसूरत, औरत थी न लड़की; फूल थी न कली, शाखा थी न तना। उसे देख कर कभी-कभी मकबूल को बहुत उलझन होती थी। वह उसमें वह बिंदु देखना चाहता था जहाँ उसने सब कुछ स्थिगित कर दिया था।

शांति के सम्बन्ध में और अधिक जानने के लिए मकबूल ने उससे हर दूसरे तीसरे रोज मिलना शुरू कर दिया। वह उसकी कोई आव-भगत नहीं करती थी। लेकिन अब उसने अपने साफ-सुथरे बिस्तर पर बैठने की आज्ञा दे दी थी। एक दिन मकबूल को बहुत आश्चर्य हुआ जब शांति ने उससे कहा' 'तुम' कोई लड़की माँगता?'

मकबूल लेटा हुआ था, चौंककर उठा, 'क्या कहा?'

शांति ने कहा, 'हम पूछती तुम कोई लड़की मांगता तो हम लाकर देता।'

मकबूल ने उससे मालूम किया कि यह बैठे-बैठे क्या खयाल आया, क्यों उसने यह प्रश्न किया तो वह मौन हो गई। जब मकबूल ने आग्रह किया तो शांति ने बताया कि मकबूल उसे एक बेकार औरत समझता है। उसे ताज्जुब है कि मर्द उसके पास क्यों आते हैं क्योंकि वह इतनी ठंडी है। मकबूल उससे सिर्फ बातें करता है और चला जाता है। वह उसे खिलौना समझता है। आज उसने सोचा—मुझ जैसी सारी औरतें तो नहीं। मकबूल को औरत की जरूरत है क्यों न वह उसे एक मँगादे।

मकबूल ने पहली बार शांति की आँखों में आँसू देखे। एकदम वह उठी

और चिल्लाने लगी, 'हम कुछ भी नहीं है जाओ चले जाओ। हमारे पास क्यों आता है? जाओ।'

मकबूल ने कुछ नहीं कहा, खामोशी से उठा और चला गया।

लगातार एक हफ्ते तक वह पैरीशियन डेयरी जाता रहा मगर शांति दिखाई न दी। अंत में एक दिन सुबह उसने उसके होटल का रुख किया। शांति ने दरवाजा खोल दिया मगर कोई बात न की। मकबूल कुर्सी पर बैठ गया। शांति के होंठों पर सुर्खी पुराने भद्दे ढंग से लगी थी; बालों का हाल भी पुराना था। साड़ी की पहनावट तो और भी ज्यादा भोंडी थी। मकबूल उससे संबोधित हुआ, 'मुझसे नाराज हो तुम?'

शांति ने उत्तर न दिया और पलंग पर बैठ गई। मकबूल ने कठोर स्वर में पूछा, 'भूल गईं जो मैंने सिखाया था?'

शांति चुप रही। मकबूल ने क्रोध में कहा, 'जवाब दो वर्ना याद रखो मारूँगा।'

शांति ने केवल इतना कहा, 'मारो।'

मकबूल ने उठकर एक जोर का चांटा उसके मुँह पर जड़ दिया। शांति बिलबिला उठी। उसकी चकित आंखों से टप-टप आँसू गिरने लगे। मकबूल ने जेब से अपना रूमाल निकाला, गुस्से में उसके होंठों की भद्दी सुर्खी पोंछी उसने विरोध किया लेकिन मकबूल अपना काम करता रहा। लिपस्टिक उठा कर नई सुर्खी लगाई—कंघे से उसके बाल सँवारे। फिर उसे डांटकर कहा, 'साड़ी ठीक करो अपनी।'

शांति उठी और साड़ी ठीक करने लगी। एकदम उसने फूट-फूटकर रोना शुरू कर दिया। और रोते-रोते बिस्तर पर गिर पड़ी। मकबूल थोड़ी देर चुप रहा। जब शांति का रोना जब कुछ कम हुआ तो उसके पास जाकर उसने कहा, 'शांति, उठो। मैं जा रहा हूँ।'

शांति ने तड़पकर करवट बदली और चिल्लाई, 'नहीं-नहीं'। तुम नहीं जा सकते।' और दोनों बाजू फैलाकर दरवाजे के बीच में खड़ी हो गई। 'तुम
[illegible] मार डालूँगी।'

वह कांप रही थी। उसका सीना जिसके बारे में मकबूल ने कभी गौर नहीं किया था जैसे गहरी नींद से उठने की कोशिश कर रहा था। मकबूल के चकित नेत्रों के सम्मुख शांति ने तले ऊपर कई तेजी से कई रंग बदले। उसकी भीगी आँखें चमक रही थीं। सुर्खी लगे बारीक होंठ हल्के-हल्के कांप रहे थे। एकदम आगे बढ़कर मकबूल ने उसे अपने सीने से भींच लिया।

दोनों पलंग पर बैठे तो शांति ने अपना सिर न्यौढ़ाकर मकबूल की गोद में डाल दिया। उसके आँसू बन्द होने ही में न आते थे; मकबूल ने उसे प्यार किया। रोना बन्द करने के लिए कहा तो वह आँसुओं में अटक कर बोली, 'उधर श्रीनगर में···एक आदमी ने··· ··हमको मार दिया था···पर एक आदमी ने···हमको जिन्दा कर दिया।'

दो घण्टे के बाद जब मकबूल जाने लगा तो उसने जेब से पचास रुपये निकाल कर शांति के पलंग पर रखे और मुस्कराकर कहा, 'लो अपने फिफ्टी रुपीज।'

शांति ने बड़े गुस्से और ग्लानि से नोट उठाये और फेंक दिये।

फिर उसने तेजी से अपनी ड्रेसिंग टेबल का एक दराज खोला और कहा, 'इधर आओ, देखो यह क्या है?'

मकबूल ने देखा सौ-सौ के कई नोटों के टुकड़े पड़े थे। मुट्ठी भर कर शांति ने उठाये और हवा में उछाले, 'हम ये नहीं मांगता।'

मकबूल मुस्कराया; हौले से उसने शांति के गाल पर छोटी सी चपत लगाई और पूछा, 'अब तुम क्या मांगता है?'

शांति ने जवाब दिया, 'तुमको।' यह कहकर वह मकबूल के साथ चिमट गई और रोना शुरू कर दिया।

मकबूल ने उसके बाल संवारते हुए बड़े प्रेम से कहा:

'रोओ नहीं, तुमने जो मांगा है वह तुम्हें मिल गया है।'

———

राम खिलावन

खटमल मारने के बाद मैं ट्रंक में पुराने कागजात देख रहा था कि सईद भाईजान की तसवीर मिल गई। मेज पर एक खाली फ्रेम पड़ा था, मैंने उस चित्र को उसी में लगाया और कुर्सी पर बैठकर धोबी की प्रतीक्षा करने लगा।

हर इतवार को मुझे इसी तरह इन्तेजार करना पड़ता; क्योंकि शनिवार की शाम को मेरे धुले कपड़ों का स्टाक खत्म होता जाता था—मुझे स्टाक तो नहीं कहना चाहिए इसलिए कि मुफलिसी के इस जमाने में मेरे पास सिर्फ इतने कपड़े थे जो मुश्किल से छ:-सात दिन तक मेरी इज्जत बचाये रख सकते थे।

मेरी शादी की बातचीत हो रही थी और इस सिलसिले में पिछले दो तीन इतवारों से मैं माहिम जा रहा था। धोबी शरीफ आदमी था, यानी धुलाई न मिलने के बावजूद हर इतवार को बाकायदगी के साथ पूरे दस बजे मेरे कपड़े ले आता था। लेकिन फिर भी मुझे खटका था कि ऐसा न हो कि मेरे पैसे न देने की मजबूरी से तंग आकर किसी दिन मेरे कपड़े चोर-बाजार में बेच दे और मुझे अपनी शादी की बातचीत में बिन कपड़ों के हिस्सा लेना पड़े और जो जाहिर है कि बहुत ही बुरी बात होती।

खोली में मरे हुए खटमलों की बहुत ही घिनौनी बू फैली हुई थी मैं सोच रहा था कि उसे किस तरह दबाऊँ कि धोबी आ गया। 'साब सलाम।' कहके उसने अपनी गठरी खोली और मेरे गिनती के कपड़े मेज पर रख दिये। ऐसा करते हुए उसकी नजर सईद भाईजान की तसवीर पर पड़ी।

बालिस्टर बहुत बड़ा आदमी होता—नपर कोलाबा में रहता होता। जब रहता भी हमको एक पगड़ी, एक धोती और एक कुर्ता दिया होता। तुमरा साब भी एक दिन बड़ा आदमी बनता।'

मैं उसकी बातों को गम्भीर भाव [illegible] किस्सा सुना चुका था कि गरीबी के जमाने में कितनी दरियादिली से धोबी ने मेरा साथ दिया था। जब दे दिया, तो दे दिया उसने कभी शिकायत भी की ही न थी। लेकिन मेरी पत्नी को कुछ समय बाद यह शिकायत पैदा हो गई कि वह हिसाब नहीं करता। मैंने उससे कहा, 'चार बरस मेरा काम करता रहा है, उसने कभी हिसाब नहीं किया।'

उत्तर मिला, 'हिसाब क्यों करता? पैसे दुगने-चौगुने वसूल कर लेता होगा।'

'वह कैसे?'

'आप नहीं जानते। जिनके घरों में पत्नियां नहीं होतीं उन्हें ऐसे लोग बेवकूफ बनाना जानते हैं।'

लगभग हर मास धोबी से मेरी बीवी की खटपट होती थी कि वह कपड़ों का हिसाब अलग अपने पास क्यों नहीं रखता। वह बड़ी सादगी से सिर्फ इतना कहता, 'बेगम साब, हम हिसाब जानता नाहीं। तुम झूठ नहीं बोलेगा। सादिक बालिस्टर जो तुम्हारे साब का भाई होता, हम एक बरस उसका काम किया होता। बेगम साब बोलता—'धोबी तुम्हारा इतना पैसा हुआ।' हम बोलता, 'ठीक है।'

एक महीने ढाई सौ कपड़े धुनाई में गये। मेरी बीवी ने उसकी परीक्षा के लिए उससे कहा, 'धोबी इस महीने साठ कपड़े हुए।'

उसने कहा, 'ठीक है बेगम साब, तुम झूठ नहीं बोलेगा।'

मेरी पत्नी ने साठ कपड़ों के हिसाब से जब उसको दाम दिये तो उसने [illegible]पये छूकर सलाम किया और चलने लगा। मेरी पत्नी ने उसे

[illegible]! साठ नहीं, ढाई सौ कपड़े थे। लो अपने बाकी रुपये; [illegible]था।

धोबी ने केवल इतना कहा, 'बेगम साब, तुम झूठ नहीं बोलेगा।' बाकी रुपये अपने माथे के साथ छूकर सलाम किया और चला गया।

विवाह के दो वर्ष पश्चात् मैं दिल्ली चला गया। डेढ़ वर्ष वहां रहा। फिर वापस बम्बई आ गया और माहिम में रहने लगा। तीन महीने के अन्दर हमने चार धोबी बदले क्योंकि वे बहुत बेईमान और झगड़ालू थे। हर धुलाई पर झगड़ा खड़ा हो जाता था—कभी कपड़े कम निकलते थे, कभी धुलाई बहुत बुरी होती थी। हमें अपना पुराना धोबी याद आने लगा। एक रोज़ जब कि हम बिल्कुल बिना धोबी के रह गये थे वह अचानक आ गया और कहने लगा, 'साब को हमने एक दिन बस में देखा। हम बोला ऐसा कैसा? साब तो दिल्ली चला गया।" हमने उधर भाईखल्ला में तपास किया। छापा वाला बोला, 'उधर माहिम में तपास करो।' बाजू वाली चाली में साब का दोस्त होता। उससे पूछा और आ गया।

हम बहुत खुश हुए और हमारे कपड़ों के दिन हंसी-खुशी गुजरने लगे।

कांग्रेस सत्तारूढ़ हुई तो शराब-बन्दी का कानून लागू हो गया। अंग्रेजी शराब मिलती थी लेकिन देसी शराब की खिंचाई और बिक्री बिल्कुल बन्द हो गई। निन्नानवे प्रतिशत धोबी शराब के आदी थे। दिन भर पानी में रहने के बाद पाव-आधपाव शराब उनके जीवन का अंग बन चुकी थी। हमारा धोबी बीमार हो गया। उस बीमारी का इलाज उसने उस ज़हरीली शराब से किया जो अवैध रूप से बनती तथा छिपे-चोरी बिकती थी। परिणाम यह निकला कि उसके पेट में बड़ी खतरनाक गड़बड़ पैदा हो गई जिसने उसे मौत के दरवाजे तक पहुंचा दिया।

मैं बहुत व्यस्त था। सुबह छः बजे घर से निकलता था और रात को दस-साढ़े दस बजे लौटता था। मेरी बीवी को जब इस खतरनाक बीमारी का पता चला तो वह टैक्सी लेकर उसके घर गई। नौकर और शोफर की सहायता से उसे गाड़ी में बिठाया और डाक्टर के पास ले गई। डाक्टर बहुत प्रभावित हुआ और उसने फीस लेने से इन्कार कर दिया। लेकिन मेरी बीवी ने कहा, 'डाक्टर साहब, आप सारा सवाब नहीं ले सकते।'

डाक्टर मुस्कराया, 'तो आधा-आधा कर दीजिए।'

डाक्टर ने आधी फीस स्वीकार कर ली।

धोबी का नियमित रूप से इलाज हुआ। पेट की तकलीफ कुछ इन्जेक्शनों से ही दूर हो गई। कमजोरी भी, पौष्टिक दवाइयों के प्रयोग से धीरे-धीरे खत्म हो गई। कुछ महीनों के बाद वह बिल्कुल ठीक-ठाक था और उठते-बैठते हमें दुआयें देता था: भगवान साब को बड़ा नामी बालिस्टर बनायें। ऊपर कोठी में साथ रहने को आयें। बाबा लोग हों। बहुत-बहुत पैसा हो। बेगम साब धोबी को लेने आया---मोटर में! ऊपर किले में (फोर्ट) बहुत बड़े डाक्टर के पास ले गया जिसके पास मेम होता...। भगवान बेगम साब को खुश रखे!

कई वर्ष व्यतीत हो गये। इस दौरान में कई राजनीतिक क्रांतियां आईं। धोबी निरन्तर हर शनिवार को आता रहा। उसका स्वास्थ्य अब बहुत अच्छा था। इतना समय बीतने पर भी वह हमारा एहसान नहीं भूला था। हमेशा दुआएं देता था। शराब बिल्कुल छूट चुकी थी। शुरू में वह कभी-कभी उसे याद किया करता था, पर अब नाम तक न लेता था। सारा दिन पानी में रहने के बाद थकान दूर करने के लिए अब उसे दारू की आवश्यकता नहीं होती थी।

परिस्थितियां बहुत बिगड़ गईं। देश-विभाजन हुआ तो हिन्दू-मुस्लिम दंगे शुरू हो गये। हिन्दुओं के इलाके में मुसलमान और मुसलमानों के इलाकों में हिन्दू दिन के प्रकाश और रात्रि के अंधकार में मारे जाने लगे। मेरी पत्नी लाहौर चली गई।

जब स्थिति और ज्यादा बिगड़ी तो मैंने धोबी से कहा, 'देखो धोबी अब तुम काम बन्द कर दो। यह मुसलमानों का मुहल्ला है। ऐसा न हो कोई तुम्हें मार डाले।'

धोबी मुस्कराया, 'साब, अपन को कोई नहीं मारता।'

हमारे मुहल्ले में भी दुर्घटनाएँ हुईं, परन्तु धोबी बराबर आता रहा।

इतवार को मैं घर में बैठा अखबार पढ़ रहा था। खेलों के पृष्ठ पर

क्रिकेट के मैचों का स्कोर दर्ज था और पहले पृष्ठ पर दंगों के शिकार हिन्दुओं तथा मुसलमानों के आँकड़े। मैं उन दोनों की भयानक समानता पर गौर कर रहा था कि धोबी आ गया। कापी निकाल कर मैंने कपड़ों की पड़ताल शुरू की तो धोबी ने हँस-हँसकर बातें शुरू कर दीं- 'साइद बालिम बालिस्टर बहुत अच्छा आदमी होता। यहाँ से चला जाता तो हमको एक पगड़ी, एक धोती और एक कुर्ता दिया होता। तुम्हारा बेगम सब भी एक दम अच्छा आदमी होना। बाहर भाग गया है ना?...अपने मुलुक में? उधर कागज लिखो तो हमारा सलाम बोलो।...मोटर लेकर आया हमारी खोली में।...हमको इतना जुलाव आया होता। डाक्टर ने सुई लगाया, हम एकदम ठीक हो गया। उधर कागज लिखो तो हमारा सलाम बोलो। बोलो रामखिलावन बोलता है हमको भी कागज लिखो......।'

मैंने उसकी बात काट कर जरा तेजी से कहा, 'धोबी, दारू शुरू कर दी?'

धोबी हँसा, 'दारू? दारू कहाँ मिलती है साब?'

मैंने और कुछ कहना उचित न समझा। उसने मेरे कपड़ों की गठरी बनाई और सलाम करके चला गया।

कुछ दिनों में स्थिति और भी अधिक खराब हो गई। लाहौर से तार-पर-तार आने लगे कि सब कुछ छोड़ो और जल्दी चले आओ। मैंने शनिवार के दिन इरादा कर लिया कि इतवार को चल दूँगा। लेकिन मुझे सुबह सवेरे निकल जाना था। कपड़े धोबी के पास थे। मैंने सोचा कर्फ्यू से पहले-पहले उसके यहाँ जाकर ले आऊँ। अत: शाम को विक्टोरिया लेकर महालक्ष्मी रवाना हो गया।

कर्फ्यू के वक्त में अभी एक घण्टा शेष था। इसलिए यातायात जारी था। ट्रामें चल रही थीं। मेरी विक्टोरिया पुल के पास पहुँची तो एकदम शोर हुआ। लोग अंधाधुंध भागने लगे। ऐसा मालूम हुआ जैसे साँडों की लड़ाई हो रही है। भीड़ छंटी तो देखा दूर भट्टियों के पास बहुत से धोबी लाठियाँ हाथ में लिए नाच रहे हैं और तरह-तरह की आवाजें निकाल रहे हैं।

मुझे उधर ही जाना था । लेकिन विक्टोरिया वाले ने इन्कार कर दिया। मैंने उसको किराया अदा किया और पैदल चल पड़ा । जब धोबियों के पास पहुँचा तो वह मुझे देखकर खामोश हो गये ।

मैंने आगे बढ़कर एक धोबी से पूछा, 'रामखिलावन कहाँ रहता है ?'

एक धोबी जिसके हाथ में लाठी थी, झूमता हुआ उस धोबी के पास आया जिससे मैंने प्रश्न पूछा था, 'क्या पूछता है ?'

'पूछता है रामखिलावन कहाँ रहता है ?'

शराब में धुत धोबी ने करीब-करीब मेरे ऊपर आकर पूछा, 'तुम कौन हो ?'

'मैं ? रामखिलावन मेरा धोबी है ।'

'रामखिलावन तुम्हारा धोबी है, तू किस धोबी का बच्चा है ?'

एक चिल्लाया, 'हिन्दू धोबी का या मुसलमान धोबी का ।'

सारे धोबी जो शराब के नशे में चूर थे, मुक्के तानते और लाठियां घुमाते मेरे इर्द-गिर्द एकत्र हो गए । मुझे केवल उनके एक प्रश्न का उत्तर देना था— मुसलमान हूँ या हिन्दू ? मैं बहुत भयभीत हो गया । भागने का सवाल ही पैदा नहीं होता था, क्योंकि मैं उनमें घिरा हुआ था । पास कोई पुलिस वाला भी नहीं था, जिसे मदद के लिए पुकारता । और कुछ समझ में न आया तो बेजोड़ शब्दों में उनसे बातचीत आरम्भ कर दी । 'रामखिलावन हिन्दू है··· हम पूछता है, वह किधर रहता है ?···उसकी खोली कहाँ है ?···दस बरस से वह हमारा धोबी है ।···बहुत बीमार था, हमने उसका इलाज कराया था·· हमारी बेगम···हमारी बेगम साहब यहां मोटर लेकर आई थीं······।' यहां तक मैंने कहा तो मुझे अपने ऊपर बहुत तरस आया । दिल-ही-दिल में बहुत लज्जित हुआ कि : 'इन्सान अपनी जान बचाने के लिये कितनी नीची सतह पर उतर आता है, इस अनुभव ने मुझे साहस प्रदान किया और फिर मैंने उससे कहा, 'मैं मुसलमीन हूँ ।'

'मार डालो, मार डालो !' का शोर बुलन्द हुआ ।

धोबी जो कि शराब के नशे में धुत्त था, एक ओर देखकर चिल्लाया, 'टहरो ! इसे रामखिलावन मारेगा।'

मैंने पलटकर देखा। रामखिलावन मोटा डण्डा हाथ में लिये लड़खड़ा रहा था। उसने मेरी ओर देखा और मुसलमानों को अपनी भाषा में गालियाँ देना शुरू कर दीं। डण्डा सिर तक उठाकर गालियाँ देता हुआ वह मेरी तरफ़ बढ़ा, मैंने आशा के स्वर में कहा, 'रामखिलावन !'

रामखिलावन दहाड़ा, 'चुप कर बे रामखिलावन के''''

मेरी अन्तिम आशा डूब गई। जब वह मेरे समीप आ पहुँचा तो मैंने रुँधे हुए-कण्ठ से धीरे से कहा, 'मुझे पहचानते नहीं रामखिलावन ?'

राम खिलावन ने प्रहार करने के लिए डण्डा उठाया। एकदम उसकी आँखें सुकड़ीं, फिर फैलीं, फिर सुकड़ीं। डण्डा हाथ से गिराकर उसने करीब आकर मुझे गौर से देखा और पुकारा, 'साब !' फिर वह अपने साथियों से सम्बोधित हुआ, 'यह मुसलमीन नहीं। यह मेरा साब है। बेगम साब का साब।'' वह मोटर लेकर आया था' डाक्टर के पास ले गया था, जिसने मेरा जुल्लाब ठीक किया था।'

रामखिलावन ने अपने साथियों को बहुत समझाया, किन्तु वे न माने। सब शराबी थे। तू-तू मैं-मैं शुरू हो गई। कुछ धोबी रामखिलावन की तरफ़ हो गये और हाथा-पाई पर नौबत आ गई। मैंने मौका ठीक समझा और वहाँ से खिसक गया।

दूसरे रोज सुबह नौ बजे के करीब मेरा सामान तैयार था। केवल जहाज के टिकटों की प्रतीक्षा थी जो एक मित्र ब्लैक मार्केट से खरीदने गया था।

मैं बहुत बेचैन था। दिल में तरह-तरह के विचार उबल रहे थे। दिल चाहता था कि जल्दी टिकट आ जायें और मैं बन्दरगाह की तरफ़ चल दूँ। मुझे ऐसा अनुभव होता था कि अगर देर हो गई तो मेरा फ्लैट मुझे अपने अन्दर कैद कर लेगा।

दरवाजे पर दस्तक हुई। मैंने सोचा टिकट आ गये। दरवाजा खोला तो बाहर धोबी खड़ा था।

'साब सलाम!'

'सलाम।'

'मैं अन्दर आ जाऊँ?'

'आओ।'

वह खामोशी से अन्दर दाखिल हुआ। गठरी खोलकर उसने कपड़े निकाल कर पलंग पर रखे। धोती से अपनी आँखें पोंछी और रुआँसा-सा होकर कहा, 'आप जा रहे हैं साब?'

'हाँ।'

उसने रोना शुरू कर दिया, 'साब मुझे माफ कर दो। यह सब दारू का कसूर था और दारू...दारू आजकल मुफ्त मिलती है।...सेठ लोग बाँटता है कि पीकर मुसलमीन को मारो।....मुफ्त की दारू कौन छोड़ता है साब।... हमको माफ कर दो।...हम पियेला था।...साइद शालिम बालिस्टर हमारा बहुत मेहरबान होता।... तुम्हारा बेगम साब हमारा जान बचाया होता।... जुल्लाब से हम मरता होता। वह मोटर लेकर आता...डाक्टर के पास ले जाता। इतना पैसा खरच करता। तुम मुलुक जाता बेगम साब से मत बोलना। रामखिलावन...।'

उसकी आवाज गले में रुँध गई। गठरी की चादर कंधे पर डालकर चलने लगा तो मैंने रोका, 'ठहरो रामखिलावन।'

लेकिन वह धोती की लाँग संभालता तेजी से बाहर निकल गया।

———

औरत ज़ात

महाराजा 'ग' से रेसकोर्स पर अशोक की मुलाकात हुई। उसके बाद दोनों अभिन्न मित्र बन गये।

महाराजा 'ग' को रेस के घोड़े पालने का शौक ही नहीं खब्त था। उसके अस्तबल में अच्छी-से-अच्छी नस्ल का घोड़ा मौजूद था और महल में जिसके गुंबद रेसकोर्स से साफ दिखाई देते थे, भाँति-भाँति की आश्चर्यजनक वस्तुएँ थीं।

अशोक जब पहली बार महल में गया तो महाराजा 'ग' ने कई घण्टे व्यतीत करके उसे अपनी तमाम अनुपलब्ध वस्तुएँ दिखाईं। इन वस्तुओं को एकत्र करने में महाराजा को सारे संसार का दौरा करना पड़ा था; प्रत्येक देश का कोना-कोना छानना पड़ा था। अशोक बहुत प्रभावित हुआ; अतः उसने तुरन्त महाराजा 'ग' के चयन-स्तर की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

एक दिन अशोक घोड़ों के टिप लेने के लिए महाराजा के पास गया तो वह डार्क रूम में फिल्म देख रहा था। उसने अशोक को वहीं बुलवा लिया। सिक्सटीन मिलिमीटर फिल्म थी जो महाराज ने स्वयं अपने कैमरे से ली थी। जब प्रोजेक्टर चला तो पिछली रेस पूरी-की-पूरी पर्दे पर दौड़ गई। महाराजा का घोड़ा इस रेस में बन आया था।

इस फिल्म के बाद महाराजा ने अशोक की फर्माइश पर और कई फिल्म दिखाईं। स्वीटजरलैंड, पेरिस, न्यूयार्क, होनू लू लू, हवाई, कश्मीर की घाटी—अशोक बहुत आनन्दित हुआ। ये सारी फिल्में प्राकृतिक रंगों में थी।

अशोक के पास भी सिक्सटीन मिलिमीटर कैमरा और प्रोजेक्टर था किन्तु

उसके पास फिल्मों का इतना बड़ा भण्डार नहीं था। दरअसल उसे इतनी फुर्स ही नहीं मिलती थी कि अपना यह शौक जी भर के पूरा कर सके।

महाराजा जब कुछ फिल्में दिखा चुका तो उसने कमरे में रोशनी की और बड़ी बेतकल्लुफी से अशोक की रान पर धप्पा मारकर कहा, 'और सुनाओ दोस्त।'

अशोक ने सिगरेट सुलगाया, 'मजा आ गया फिल्म देखकर।'

'और दिखाऊँ ?'

'नहीं, नहीं।'

'नहीं भई, एक जरूर देखो। मजा आ जायगा तुम्हें।' यह कहकर महाराजा 'ग' ने एक संदूकचा खोलकर एक रील निकाली और प्रोजेक्टर पर चढ़ा दी। 'जरा इत्मीनान से देखना।'

अशोक ने पूछा, 'क्या मतलब,?'

महाराजा 'ग' ने कमरे की लाइट आफ कर दी। 'मतलब यह कि हर चीज गौर से देखना।' कहकर उसने प्रोजेक्टर का स्विच दबा दिया।

पर्दे पर कुछ क्षणों तक सफेद रोशनी थरथराती रही। फिर एकदम तस्वीरें शुरू हो गईं। एक सर्वथा नग्न स्त्री सोफे पर लेटी थी; दूसरी शृंगार-मेज के पास खड़ी बाल सँवार रही थी।

अशोक कुछ देर खामोश बैठा देखता रहा। उसके बाद एक दम उसके कण्ठ से कुछ विचित्र आवाज निकली। महाराजा ने हँसकर उससे पूछा, 'क्या हुआ ?'

अशोक के कण्ठ से आवाज फँस-फँसकर बाहर निकली, 'बन्द करो यार, बन्द करो !

'क्या बन्द करो !'

अशोक उठने लगा; लेकिन महाराजा ने उसे पकड़कर बिठा दिया, 'यह ‑म तुम्हें पूरी-की-पूरी देखनी पड़ेगी।

‑म चलती रही। स्त्री-पुरुष का शारीरिक सम्बन्ध निपट नग्नता के ‑खता रहा। अशोक ने सारा समय बेचैनी में काटा। जब फिल्म

बन्द हुई और पर्दे पर केवल श्वेत प्रकाश था तो अशोक को ऐसा अनुभव हुआ कि जो कुछ उसने देखा था, प्रोजेक्टर की बजाय उसकी आँखें फेंक रही हैं।

महाराजा 'ग' ने कमरे की बत्ती खोली और अशोक की ओर देखा और एक जोर का ठहाका लगाया, 'क्या हो गया तुम्हें ?'

अशोक कुछ घुटन-सा गया था। एकदम प्रकाश होने के कारण उसकी आँखें मिची हुई थीं। माथे पर पसीने के छोटे-छोटे कतरे थे। महाराजा 'ग' ने जोर से उसकी रान पर धप्पा मारा और ऐसे जोर से हँसा कि उसकी आँखों में आंसू आ गये। अशोक सोफे पर से उठा, रूमाल निकालकर अपने माथे का पसीना पोंछा। 'कुछ नहीं यार।'

'कुछ नहीं क्या ? मजा नहीं आया ?'

अशोक का कण्ठ सूखा हुआ था। थूक निगलकर उसने कहा, 'कहाँ से लाये यह फिल्म ?'

महाराजा 'ग' ने सोफे पर लेटते हुए उत्तर दिया, 'पेरिस से। पेरि··· पेरि······।'

अशोक ने सिर को झटका-सा दिया, 'कुछ समझ में नहीं आता।'

'क्या ?'

'ये लोग। मेरा मतलब है कैमरे के सामने ये लोग कैसे ··?'

'यही तो कमाल है। है कि नहीं ?'

'यह है तो सही, यह कहकर अशोक ने रूमाल से अपनी आँखें साफ कीं। सारी तसवीरें जैसे मेरी आँखों में फंस-सी गई हैं।'

महाराजा 'ग' उठा, 'मैंने एक बार कुछ महिलाओं को यह फिल्म दिखाई।'

अशोक चिल्लाया, महिलाओं को ?'

हां, हां। बड़े मजे लेकर देखा उन्होंने।'

'गलत।'

महाराजा 'ग' ने बड़ी गम्भीरता से कहा, 'सच कहता हूं । एक बार देख कर दूसरी बार फिर देखा । चीखती, चिल्लाती और हंसती रही ।

अशोक ने अपने सिर को झटका-सा दिया, 'हद हो गई है । मैं तो समझता था वे बेहोश हो गई होंगी ।'

'मेरा भी यही ख्याल था, लेकिन उन्होंने खूब आनन्द लिया ।'

अशोक ने कहा, क्या यूरोपियन थी ?'

महाराजा 'ग' ने कहा, 'नहीं भाई, अपने देश की थीं । मुझसे कई बार यह फिल्म और प्रोजेक्टर मांग के ले गई । मालूम नहीं कितनी सहेलियों को दिखा चुकी है ।'

'मैंने कहा…।' अशोक कुछ कहते-कहते रुक गया ।

'क्या ?'

'एक-दो रोज के लिए यह फिल्म दे सकते हो मुझे ?'

'हां हां ले जाओ ।' यह कहकर महाराजा 'ग' ने अशोक की पसलियों में टहोका दिया, 'साले ! किसे दिखायेगा ?'

'मित्रों को ।'

'दिखा जिसे भी तेरी मर्जी हो ।' कहकर महाराजा 'ग' ने प्रोजेक्टर में से फिल्म को एक स्पूल से निकाला और उसे दूसरे स्पूल पर चढ़ा दिया और डिब्बा अशोक के हवाले कर दिया ।

'ले पकड़, ऐश कर ।'

अशोक ने डिब्बा हाथ में ले लिया तो उसके बदन में झुर-झुरी-सी दौड़-गई । घोड़ों की टिप लेना भूल गया और कुछ मिनट इधर-उधर की बातें करने के बाद चला गया ।

घर से प्रोजेक्टर ले जाकर उसने कई दोस्तों को यह फिल्म दिखाई । लगभग सभी के लिए मानव जाति की यह नग्नता एकदम नई वस्तु थी । अशोक ने प्रत्येक की प्रतिक्रिया नोट की । कुछ ने मामूली-सी घबराहट प्रकट की और फिल्म का एक-एक इंच गौर से देखा; कुछ ने थोड़ा-सा देखकर

आँखें बन्द करलीं। कुछ आँखें खुली रखने के बावजूद पूरी फिल्म को न देख सके। एक बर्दाश्त न कर सका और उठकर चला गया।

तीन-चार दिन के बाद अशोक को फिल्म वापस करने का ख्याल आया तो उसने सोचा क्यों न अपनी बीबी को दिखाऊँ? अतः वह प्रोजेक्टर अपने घर ले गया। रात हुई तो उसने अपनी पत्नी को बुलाया, दरवाजे बन्द किये, प्रोजेक्टर का कनेक्शन वगैरा ठीक किया, फिल्म निकाली, उसे फिट किया, कमरे की बत्ती बुझाई और फिल्म चला दी।

पर्दे पर कुछ क्षण तक सफेद रोशनी थरथराई। फिर तसवीरें शुरू हुईं। अशोक की बीवी जोर से चीखी, तड़पी, उछली और उसके मुँह से विचित्र आवाजें निकलीं। अशोक ने उसे पकड़कर बिठाना चाहा तो उसने आँखों पर हाथ रख लिया और चीखना शुरू कर दिया, 'बन्द करो! बन्द करो!!'

अशोक ने हँसकर कहा 'अरे भई देख लो, शरमाती क्यों हो?'

'नहीं, नहीं।' यह कहकर उसने हाथ छुड़ाकर भागना चाहा।

अशोक ने उसे जोर से पकड़ लिया। वह हाथ जो उसकी आँखों पर था, एक ओर खेंचा। इस खेंचा-तानी में सहसा अशोक की पत्नी ने रोना आरम्भ कर दिया। अशोक के जैसे धक्का सा लग गया। उसने तो मात्र मनोरंजन के उद्देश्य से अपनी पत्नी को फिल्म दिखाई थी।

रोती और बड़बड़ाती उसकी पत्नी दरवाजा खोल कर बाहर निकल गई। अशोक कुछ क्षण सर्वथा सज्ञाहीन बैठा नग्न चित्र देखता रहा, जो अमानुषिक कृत्यों में व्यस्त थे। फिर यकायक उसने मामले की गम्भीरता का अनुभव किया और इस अनुभव ने उसे लज्जा के समुद्र में गर्क कर दिया। उसने सोचा मुझसे अत्यन्त असोभनीय कृत्य हो गया है और आश्चर्य है कि मुझे इसका भान तक न हुआ। दोस्तों को दिखाई थी, ठीक थी। मगर मैं और किसी को नहीं अपनी पत्नी को''' उसके माथे पर पसीना आ गया।

फिल्म चल रही थी। निपट नग्नता विभिन्न आसन धारण करती दौड़ रही थी। अशोक ने उठकर स्विच ऑफ कर दिया। पर्दे पर सब कुछ बुझ

गया। किन्तु उसने अपनी दृष्टि दूसरी ओर फेर ली। उसका हृदय तथा मस्तिष्क लज्जा में डूबा हुआ था। यह अनुभव उसे चुभ रहा था कि उससे एक अत्यन्त अशोभनीय, बहुत ही मूर्खतापूर्ण कृत्य हुआ है। उसने यहां तक सोचा कि वह कैसे अपनी पत्नी से आंख मिला सकेगा।

कमरे में घुप अंधेरा था। एक सिगरेट सुलगाकर उसने इस लज्जा के अनुभव को विविध विचारों द्वारा दूर करने की चेष्टा की; किन्तु सफल न हुआ। थोड़ी देर दिमाग में इधर-उधर हाथ मारता रहा। जब चारों ओर से धिक्कार ही मिला तो वह उकता गया और एक विचित्र इच्छा उसके हृदय में उत्पन्न हुई कि जिस प्रकार कमरे में अंधेरा है उसी प्रकार उसके मस्तिष्क पर अंधकार छा जाये।

बार-बार उसे यह बात सता रही थी, 'ऐसी मूर्खतापूर्ण तथा अशिष्ट बात और मुझे ध्यान तक न आया।' फिर वह सोचता: 'बात यदि सास तक पहुँच गई सालियों को पता चल गया तो वे मेरे बारे में क्या राय क़ायम करेंगी, यही न कि मैं कितने गिरे हुए आचरण का व्यक्ति हूँ। ऐसी नीच प्रवृत्ति कि अपनी पत्नी को....।'

तंग आकर अशोक ने सिगरेट सुलगाया। वे नंगे चित्र जो वह कई बार देख चुका था, उसकी आँखों के सामने नाचने लगे। उनके पीछे उसे अपनी पत्नी का चेहरा नजर आता। वह नितांत चकित तथा घबराया हुआ था। उसने जीवन में पहली बार दुर्गन्ध का इतना बड़ा ढेर देखा था। सिर झटक कर अशोक उठा और कमरे में टहलने लगा। किन्तु उससे भी उसकी व्याकुलता दूर न हुई।

थोड़ी देर बाद वह दबे पांव कमरे से बाहर निकला। पास के कमरे में झांककर देखा: उसकी पत्नी मुँह और सिर लपेट कर लेटी हुई थी। काफी देर खड़ा सोचता रहा कि अन्दर जाकर समुचित शब्दों में उससे क्षमा ांगे। लेकिन खुद इतना साहस पैदा न कर सका। दबे पांव लौटा और यारे कमरे में सोफे पर लेट गया। देर तक जागता रहा, अन्त में सो गया।

सुबह सवेरे उठा, रात की घटना उसके मस्तिष्क में पुनर्जीवित हो गई। अशोक ने पत्नी मिलना उचित नहीं समझा और नाश्ता किये बिना ही चल दिया।

आफिस में उसने दिल लगाकर कोई काम न किया। यह अनुभव उसके दिल व दिमाग के साथ चिपट कर रह गया था, 'ऐसी निरर्थक बात और मुझे ध्यान तक न आया।'

कई बार उसने घर बीवी को टेलिफोन करने का इरादा किया; लेकिन हर बार डायल के आधे अंक घुमाकर रिसीवर रख दिया। दोपहर को घर से जब उसका खाना आया तो उसने नौकर से पूछा, 'मेम साहब ने खाना खा लिया ?'

नौकर ने उत्तर दिया, 'जी नहीं वह कहीं बाहर गये हैं।'

कहाँ ?'

'मालूम नहीं साहब।'

'कब गये थे ?'

'ग्यारह बजे।'

अशोक का दिल धड़कने लगा; भूख गायब हो गई। दो-चार ग्रास खाये और हाथ उठा लिया। उसके दिमाग में हलचल मच गई थी। तरह-तरह के विचार उत्पन्न हो रहे थे—ग्यारह बजे''अभी तक नहीं लौटीं''''''गई कहाँ है'''माँ के पास ? क्या वह उसे सब कुछ बता देगी ?''''''जरूर बतायेगी। ''माँ से बेटी सब कुछ कह सकती है।'''हो सकता है बहनों के पास गई हो।'''सुनेंगी तो क्या कहेंगी ?'''दोनों मेरी कितनी इज्जत करती थी। जाने बात कहाँ से कहाँ पहुँचेगी। ऐसी मूर्खता और मुझे खयाल भी न आया।'

अशोक दफ्तर से बाहर निकल गया। मोटर ली और इधर उधर आवारा चक्कर लगाता रहा। जब कुछ समझ में न आया तो उसने मोटर का रुख घर की तरफ फेर दिया : 'देखा जायगा जो कुछ होगा।'

घर के पास पहुँचा तो उसका दिल धड़कने लगा। जब निपट एक

लपके के साथ ऊपर उठी तो उसका दिल उछलकर उसके मुँह में आ गया।

लिफ्ट तीसरी मंजिल पर रुकी। कुछ देर सोचकर उसने दरवाजा खोला। अपने फ्लैट के पास पहुँचा तो उसके कदम रुक गये। उसने सोचा कि लौट जाये। मगर फ्लैट का दरवाजा खुला और उसका नौकर बीड़ी पीने के लिए बाहर निकला। अशोक को देखकर उसने बीड़ी हाथ में छिपा ली और सलाम किया। अशोक ने रुककर उससे पूछा, 'मेम साहब कहाँ हैं?'

नौकर ने जवाब दिया, 'अन्दर कमरे में हैं।'

'और कौन है?

'डाक्टर वर्मा साहब। कोनाके वाले साहब की मेम साहब और दो पारसी बाइयाँ।'

यह सुनकर अशोक बड़े कमरे की ओर बढ़ा। दरवाजा बन्द था उसने खटका दिया। अन्दर से अशोक की पत्नी की पतली किन्तु तेज आवाज आई, 'कौन है?'

नौकर बोला, 'साहब।'

अन्दर कमरे में एक दम गड़बड़ी शुरू हो गई; चीखें आईं, दरवाजे की चटखनियाँ खुलने की आवाजें आईं; खटपट, फट-फट हुई। अशोक कारीडोर में होता पिछले दरवाजे से कमरे में प्रविष्ट हुआ तो उसने देखा कि प्रोजेक्टर चल रहा है और पर्दे पर दिन के प्रकाश में धुँधली-धुँधली इन्सानी शक्लें एक घृणोत्पादक ढंग से अमानुषिक कृत्यों में लीन हैं।

अशोक ठहाका मारकर हँसने लगा।

अल्ला दित्ता

दो भाई थे—अल्ला रखा और अल्ला दित्ता। दोनों रियासत पटियाला के निवासी थे। उनके पूर्वज तो लाहौर से आये थे किन्तु जब इन दो भाइयों का दादा नौकरी की तलाश में पटियाला आया तो वहीं का हो रहा।

अल्ला रखा और अल्ला दित्ता दोनों सरकारी कर्मचारी थे। एक चीफ़ सैक्रेटरी साहब बहादुर का अर्दली था, दूसरा कन्ट्रोलर आफ़ स्टोर्स के दफ्तर का चपरासी।

दोनों भाई एक साथ रहते थे ताकि खर्च कम हो। बड़ी अच्छी गुजर हो रही थी। एक सिर्फ़ अल्लारखा को जो बड़ा था अपने छोटे भाई के चाल-चलन के बारे में शिकायत थी। वह शराब पीता था, रिश्वत लेता था और कभी-कभी किसी गरीब और निर्धन स्त्री को फाँस भी लिया करता था। किन्तु अल्ला रखा ने हमेशा उसे जान-बूझकर अनदेखा किया ताकि घर की शान्ति तथा व्यवस्था भंग न हो।

दोनों विवाहित थे। अल्ला रखा की दो लड़कियाँ थीं। एक ब्याही जा चुकी थी और अपने घर में खुश थी। दूसरी जिसका नाम सुगरा था, तेरह वर्ष की थी और प्राइमरी स्कूल में पढ़ती थी।

अल्ला दित्ता की एक लड़की थी—जैनब। उसकी शादी हो चुकी थी; किन्तु अपने घर में कोई इतनी खुश नहीं थी, इसलिए कि उसका पति व्यभिचारी था फिर भी वह ज्यों-त्यों निभाये जा रही थी।

जैनब अपने भाई तुफ़ैल से तीन वर्ष बड़ी थी। इस हिसाब से तुफ़ैल की आयु अठारह-उन्नीस वर्ष की होती थी। वह लोहे के एक छोटे से कारखाने में

काम सीख गया था। लड़का बुद्धिमान था अतः काम सीखने के दौरान में पंद्रह रुपये मासिक उसे मिल जाते थे। दोनों भाइयों की पत्नियां बड़ी आज्ञाकारिणी, परिश्रमी तथा ईमान-भक्त थीं। उन्होंने अपने पतियों को कभी शिकायत का मौका नहीं दिया था।

जीवन बड़ा मस्ताना तथा सुगन्ध अनीन हो रहा था कि सहसा हिन्दू-मुस्लिम दंगे शुरू हो गये। दोनों भाइयों ने कभी कल्पना भी न की थी कि उनके प्राण, संपत्ति तथा प्रतिष्ठा पर आक्रमण होगा और उन्हें आपाधापी और दरिद्रता की दशा में रियासत पटियाला छोड़नी पड़ेगी—किन्तु ऐसा हुआ।

दोनों भाइयों को बिल्कुल पता न था कि इस खूनी तूफान में कौन सा वृक्ष गिरा, कौन से पेड़ की कौनसी शाखा टूटी। जब होश-हवास कुछ ठीक हुये तो कुछ वास्तविकताएँ सामने आईं और वे कांप उठे।

अल्ला रखा की लड़की का पति शहीद कर दिया गया था और उसकी पत्नी की बलवाइयों ने बड़ी बेदर्दी से हत्या कर दी थी।

अल्ला दित्ता की बीवी को भी सिक्खों ने कृपाणों से काट डाला था। उसकी लड़की जैनब का दुराचारी पति भी मौत के घाट उतार दिया गया था।

रोना-धोना बेकार था। सब संतोष करके बैठ रहे। पहले तो कैम्पों में गलते-सड़ते रहे, फिर गली-कूचों में भीख मांगा किये। आखिर खुदा ने सुनी। अल्ला दित्ता को गुजरानवाला में एक छोटा-सा टूटा-फूटा मकान सिर छिपाने को मिल गया। तुफैल ने दौड़-धूप की तो उसे काम मिल गया।

अल्ला रखा लाहौर ही में देर तक दर-बदर फिरता रहा। जवान लड़की साथ थी मानो एक पहाड़-का-पहाड़ उसके सिर पर खड़ा था। यह अल्लाह ही बेहतर जानता है कि उस बेचारे ने किस प्रकार डेढ़ वर्ष बिताया। बीवी और बड़ी लड़की का शोक वह बिल्कुल भूल चुका था। सभव था कि वह कोई खतरनाक कदम उठाये कि उसे रियासत पटियाला के एक बड़े अफसर मिल गये जो उसके बड़े मेहरबान थे। उसने उन्हें अपनी कथा अ से ह तक कह

सुनाई। आदमी दयावान था। उसे बड़ी कठिनाइयों के बाद लाहौर के एक अस्थायी कार्यालय में अच्छी नौकरी मिल गई थी। अतः उसने दूसरे दिन ही उसे चालीस रुपये मासिक पर नौकर रख लिया और एक छोटा सा क्वाटर भी रहने के लिए दिलवा दिया।

अल्ला रखा ने खुदा का शुक्र अदा किया जिसने उसकी मुश्किलें दूर की अब वह आराम से सांस ले सकता था। सुगरा बड़ी व्यवस्थाप्रिय तथा सुगढ़ लड़की थी। सारा दिन घर के काम-काज में व्यस्त रहती। इधर-उधर से लकड़ियाँ चुनकर लाती, चूल्हा सुलगाती और मिट्टी की हंडिया में हर रोज इतनी तरकारी पकाती जो दो वक्त के लिए पूरी हो जाय। आटा गूँधती, पास ही तन्दूर था वहाँ जाकर रोटियाँ लगवा लेती।

एकान्त में मनुष्य क्या कुछ नहीं सोचता ? तरह-तरह के विचार आते हैं। सुगरा आम तौर पर दिन में अकेली होती थी और अपनी बहन तथा मां की याद करके आंसू बहाती रहती थी। पर जब बाप आता तो वह अपनी आँखों में सारे आंसू पुछक कर लेती थी ताकि उसके घाव हरे न हों। लेकिन वह इतना जानती थी कि उसका बाप अन्दर ही अन्दर घुला जा रहा है। उसका दिल हर वक्त रोता रहता है लेकिन वह किसी से कुछ कहता नहीं। सुगरा से भी उसने कभी उसकी माँ और बहन का जिक्र नहीं किया था।

जिन्दगी गिरते-पड़ते गुजर रही थी। उधर गुजरानवाला में अल्ला दित्ता अपने भाई की अपेक्षा कुछ हद तक खुशहाल था क्योंकि उसे भी नौकरी मिल गई थी और जैनब भी थोड़ा-बहुत सिलाई का काम कर लेती थी। मिल-मलाकर कोई सौ रुपये माहवार हो जाते थे जो तीनों के लिए बहुत काफी थे।

मकान छोटा था लेकिन ठीक था। ऊपर की मंजिल में तुफैल रहता था, निचली मंजिल में जैनब और उसका बाप। दोनों एक-दूसरे का बहुत ख्याल रखते थे। अल्ला दित्ता उसे अधिक काम नहीं करने देता था। अतः मुँह-अंधेरे उठकर वह आँगन में झाड़ू देकर चूल्हा सुलगा देता था कि जैनब का

कुछ काम करता ही जाये। जब मिलता तो वह तीन-तीन गड्डे भरकर पड़ोसी पर रख देता था।

ईश्वर ने अपने शहीद पति को अभी याद नहीं किया था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह उसके जीवन में कभी था ही नहीं। वह खुश थी। अपने बाप के साथ वह खुश थी। कभी-कभी वह उससे लिपट जाती थी, तुफैल के सामने भी। और उसे खूब चूमती थी।

सुगरा अपने पिता से ऐसे प्यार नहीं करती थी। यदि संभव होता तो वह उससे पर्दा करती—इसलिए नहीं कि वह कोई बेगाना था, नहीं बल्कि केवल आदर के लिए। उसके दिल से कई बार यह दुआ उठती थी, 'या परवरदिगार, मेरा बाप मेरा जनाजा उठाये!'

कभी-कभी कई दुआएँ उल्टी साबित होती हैं। जो खुदा को मंजूर था वही होना था। बेचारी सुगरा के सिर पर शोक व संताप का एक पहाड़ टूटना था।

जून के महीने दोपहर को दफ्तर से किसी काम पर जाते हुए तपती सड़क पर अल्ला रखा को ऐसी लू लगी कि बेहोश होकर गिर पड़ा। लोगों ने उठाया अस्पताल पहुँचाया। किन्तु दवा दारू ने कोई काम नहीं किया।

सुगरा बाप की मौत के सदमे से आधी पागल हो गई। उसने करीब-करीब अपने आधे बाल नोच डाले। पड़ोसियों ने बहुत दम-दिलासा दिया मगर वह कारगर कैसे होता—वह तो ऐसी नौका के समान थी जिसका न कोई बादबान हो और न कोई पतवार, जो बीच मँझधार में आ फँसी हो।

पटियाले के वह अफसर जिन्होंने अल्ला रखा को नौकरी दिलवाई थी दया के देवता सिद्ध हुए। उन्हें जब सूचना मिली तब दौड़े आये। सबसे पहले उन्होंने यह काम किया कि सुगरा को मोटर में बिठाकर घर छोड़ आये और अपनी पत्नी से कहा कि वह उसका खयाल रखे। फिर अस्पताल जाकर उन्होंने अल्ला रखा के स्नानादि का वहीं प्रबंध किया और दफ्तर वालों से कहा कि वे उसे दफना आयें।

अल्ला दिता को अपने भाई के देहान्त की सूचना बड़ी देर के बाद मिली।

बहरहाल वह लाहौर आया और पूछता-पूछता वहाँ पहुँच गया जहाँ सुगरा थी। उसने अपनी भतीजी को बहुत दम-दिलासा दिया, बहलाया, सीने से लगाया, प्यार किया, असार को नश्वरता का जिक्र किया, बहादुर बनने को कहा। किंतु सुगरा के फटे हुये दिल पर इन तमाम बातों का क्या प्रभाव पड़ता। बेचारी चुपचाप अपने आँसू दुपट्टे में सुखाती रही।

अल्ला दित्ता ने अफसर साहब से अन्त में कहा, मैं आपका बहुत आभारी हूं। मेरी गर्दन सदैव आपके उपकारों तले दबी रहेगी। भाई की अन्त्येष्टि का आपने प्रबंध किया, फिर यह बच्ची जो बिल्कुल निराश्रय रह गई थी, उसे आपने अपने घर में जगह दी। खुदा आपको इसका बदला दे। अब मैं इसे अपने साथ ले जाना हूं। मेरे भाई की यही कीमती निशानी है।'

अफसर साहब ने कहा, 'ठीक है, लेकिन तुम अभी इसे कुछ देर और यहाँ रहने दो। तबियत सँभल जाय तो ले जाना।'

अल्ला दित्ता ने कहा, 'हुजूर, मैंने निश्चय किया है कि मैं इसकी शादी अपने लड़के से करूंगा और बहुत जल्दी।'

अफसर साहब बहुत खुश हुए, 'बड़ा नेक इरादा है, लेकिन इस स्थिति में जबकि तुम इसका विवाह अपने लड़के से करने वाले हो इसका उस घर में रहना ठीक नहीं। तुम शादी का प्रबंध करो मुझे तारीख की सूचना दे देना। खुदा के करम से सब ठीक हो जायगा।'

बात ठीक थी। अल्ला दित्ता वापस गुजरानवाला चला गया। जैनब उसकी अनुपस्थिति में बड़ी उदास हो गई थी। जब वह घर में प्रविष्ट हुआ तो उससे लिपट गई और कहने लगी कि उसने इतनी देर क्यों लगाई।

अल्ला दित्ता ने प्यार से उसे एक ओर हटाया, 'अरे बाबा, आना जाना तो क्या है, कब्र पर फातिहा पढ़नी थी। सुगरा से मिलना था, उसे यहां लाना था।'

जैनब न जाने क्या सोचने लगी, 'सुगरा को यहाँ लाना था?' एकदम चौंककर, हाँ, सुगरा को यहाँ लाना था। पर वह कहाँ है?'

'वहीं है। पटियाले के एक बड़े नेकदिल अफसर हैं, उनके पास है।

उन्होंने कहा, 'जब तुम इसकी शादी का बंदोबस्त कर लोगे तो ले जाना।' यह कहते हुए उसने थोड़ी मुस्कराई।

जैनब ने बड़ी दिलचस्पी लेते हुए पूछा, 'उसकी शादी का बन्दोबस्त कर रहे हो? कोई लड़का है तुम्हारी नज़र में?'

अल्ला दित्ता ने जोर का कश लिया, 'अरे भाई अपना तुफैल है न। मेरे बड़े भाई कि सिर्फ एक ही निशानी तो है। मैं उसे क्या दूसरों के हवाले कर दूंगा?'

जैनब ने ठण्डी सांस भरी, 'तो सुगरा की शादी तुम तुफैल से करोगे?'

अल्ला दित्ता ने उत्तर दिया, 'हां! क्या तुम्हें कोई एतराज है?'

जैनब ने बड़े सबल स्वर में कहा, 'हां, और तुम जानते हो क्यों है। यह शादी हरगिज नहीं होगी।'

अल्ला दित्ता मुस्कराया। जैनब की ठोड़ी पकड़कर उसने उसका मुँह चूमा, 'पगली हर बात पर शक करती है। और बातों को छोड़, आखिर मैं तुम्हारा बाप हूं।'

जैनब ने बड़े जोर से 'हुंह' की, 'बाप!' और अन्दर कमरे में जाकर रोने लगी।

अल्ला दित्ता उसके पीछे गया और उसे पुचकारने लगा।

दिन गुजरते गये। तुफैल आज्ञाकारी बेटा था। जब उसके बाप ने सुगरा की बात की तो वह फ़ौरन मान गया। आखिर तीन-चार महीने के बाद तारीख निश्चित हो गई। अफ़सर साहब ने सुगरा के लिए फौरन एक बहुत अच्छा जोड़ा सिलवाया जो उसे शादी के दिन पहनना था। एक अंगूठी भी ले दी। फिर उसने मुहल्ले वालों से अपील की कि वे एक अनाथ लड़की के व्याह के लिए जो नितान्त निराश्रय है यथाशक्ति कुछ दें।

सुग़रा को लगभग सभी जानते थे और उसकी स्थिति से अभिज्ञ थे। अतएव उन्होंने मिल-मिलाकर उसके लिए बड़ा अच्छा दहेज तैयार कर दिया।

सुग़रा दुल्हन बनी तो उसे ऐसा अनुभव हुआ कि सारे दुःख एकत्र हो गये हैं और उसे पीस रहे हैं। बहरहाल वह अपनी ससुराल पहुंची जहाँ उसका

स्वागत जैनब ने किया—कुछ इस तरह कि सुगरा को उसी समय मालूम हो गया कि वह उसके साथ बहनों का सा व्यवहार कभी नहीं करेगी बल्कि सास की तरह पेश आयेगी।

सुगरा का संदेह सही था। उसके हाथों की मेंहदी अभी अच्छी तरह उतरने भी नहीं पाई थी कि जैनब ने उससे नौकरों के काम लेने शुरू कर दिये; झाड़ू वह देती, बर्तन मांजती, चूल्हा वह झोंकती, पानी वह भरती। यह सब वह बड़ी फुर्ती और बड़ी सुघड़ता से करती, लेकिन फिर भी जैनब खुश न होती बात-बात पर उसे डाँटती, डपटती और झिड़कती रहती।

सुगरा ने दिल में निश्चय कर लिया था कि वह सब कुछ बर्दाश्त करेगी और कभी ज़बान से कोई शिकायत न करेगी। क्योंकि यदि उसे यहाँ से धक्का मिल गया तो उसके लिए और कोई ठिकाना नहीं था।

मल्ला दित्ता का व्यवहार उससे बुरा नहीं था। जैनब की नजर बचाकर कभी-कभी वह उसे प्यार कर लेता था और कहता था कि वह कुछ चिन्ता न करे। सब ठीक हो जायगा।

सुगरा को इससे बहुत ढाढ़स होता। जैनब जब कभी अपनी किसी सहेली के यहाँ जाती और मल्ला दित्ता संयोगवश घर पर होता तो वह उससे दिल खोलकर प्यार करता। उससे बड़ी मीठी-मीठी बातें करता, काम में उसका हाथ बटाता, उसके लिए जो वस्तुयें छिपाकर रखी होती थीं देता और उसे सीने से लगाकर उससे कहता, 'सुगरा, तुम बड़ी प्यारी हो।'

सुगरा झेंप जाती। असल में वह इतने उत्साहपूर्ण प्रेम की आदी नहीं थी। उसका मरहूम बाप अगर उसे कभी प्यार करना चाहता था तो सिर्फ उसके सिर पर हाथ फेर दिया करता था या उसके कंधे पर हाथ रखकर यह दुआ दिया करता था, 'खुदा मेरी बेटी के नसीब अच्छे करे।'

सुगरा तुफ़ैल से बहुत खुश थी। वह अच्छा पति था। जो कमाता था उसके हवाले कर देता था किन्तु सुगरा जैनब को दे देती थी इसलिए कि वह उसके प्रकोप से डरती थी।

तुफ़ैल से सुगरा ने जैनब के दुर्व्यवहार और उसके सास जैसे बर्ताव का

कभी जिक्र न किया था। वह वस्तुतः शांतिप्रिय थी। वह नहीं चाहती थी कि उसके कारण घर में किसी प्रकार का झगड़ा पैदा हो। और भी कई बातें थीं जो वह जैनब से कहना चाहती थी पर कह देती किन्तु उसे डर था कि तूफान उठ खड़ा होगा। और वे तो बचकर निकल जायेंगे लेकिन वह अकेली उसमें फंस जायेगी और उसे सहन न कर सकेगी।

ये तमाम बातें उसे कुछ रोज हुए मालूम हुई थी और वह कांप-कांप गई थी। अब अल्ला दिता उसे प्यार करना चाहता तो वह अलग हट जाती या दौड़कर ऊपर चली जाती जहां वह और तुफैल रहते थे।

तुफैल को शुक्रवार की छुट्टी होती थी अल्ला दिता को इतवार की। यदि जैनब घर पर होती तो वह जल्दी जल्दी काम-काज खत्म करके ऊपर चली जाती। मगर संयोगवश इतवार को जैनब कहीं बाहर गई होती तो सुगरा की जान पर बनी रहती। डर के मारे उससे काम न होता। लेकिन जैनब का ख्याल आता तो उसे मजबूरन कांपते हाथों और धड़कते दिल से इच्छा या अनिच्छा से सभी कुछ करना पड़ता। यदि वह खाना ठीक समय पर न पकाये तो उसका पति भूखा रहे क्योंकि वह ठीक बारह बजे अपना शिष्य रोटी के लिए भेज देता था।

एक दिन इतवार को जब कि जैनब घर पर नहीं थी तो वह आटा गूंध रही थी। अल्ला दिता पीछे से दबे पांव आया और आकर उसकी आंखों पर हाथ रख दिये। वह तड़प कर उठी किन्तु अल्ला दिता ने उसे अपनी मजबूत गिरफ्त में ले लिया।

सुगरा ने चीखना शुरू कर दिया, मगर वहां सुनने वाला कौन था। अल्ला दिता ने कहा, 'शोर मत मचाओ। यह सब बेफायदा है, चलो आओ।

वह चाहता था कि सुगरा को उठाकर अन्दर ले जाय। कमजोर थी लेकिन खुदा जाने उसमें कहां से इतनी शक्ति आगई कि अल्ला दिता की गिरफ्त से निकल गई और हांफती-कांपती ऊपर पहुंच गई। कमरे में प्रविष्ट होकर उसने अन्दर से कुण्डी चढ़ा दी।

थोड़ी देर के बाद जैनब आ गई। अल्ला दिता की तबियत खराब हो

गई थी। अन्दर कमरे में लेट कर उसने जैनब को पुकारा। वह आई तो उसने कहा, 'इधर आओ मेरी टांगें दबाओ।' जैनब उचक कर पलग पर बैठ गई और अपने बाप की टांगें दबाने लगी। थोड़ी देर के बाद दोनों के सांस तेज-तेज चलने लगे।

जैनब ने अल्ला दिता से पूछा, 'क्या बात है आज तुम अपने आपे में नहीं हो ?'

अल्ला दिता ने सोचा कि जैनब से छिपाना बिल्कुल बेकार है अतः उसने सारी घटना सुना दी। जैनब आग-बबूला हो गई, 'क्या एक काफी नहीं थी तुम्हें ? पहले शर्म नहीं आई, पर अब तो आनी चाहिए थी। मुझे मालूम था कि ऐसा होगा। इसीलिए मैं शादी के खिलाफ थी। अब सुनलो कि सुगरा इस घर में नहीं रहेगी।

अल्ला दिता ने बड़े भोलेपन से पूछा, 'क्यों?'

जैनब ने खुले तौर पर कहा, 'मैं इस घर में अपनी सौत नहीं देखना चाहती।'

अल्ला दिता का कण्ठ सूख गया। उसके मुंह से कोई बात न निकल सकी।

जैनब बाहर निकली तो उसने देखा कि सुगरा आंगन में झाड़ू दे रही है; चाहती थी कि उससे कुछ कहे लेकिन चुप रही।

इस घटना को घटे दो मास बीत गये। सुगरा ने अनुभव किया कि तुफैल उससे खिचा-खिचा रहता है। जरा-जरा-सी बात पर उसे शक की निगाहों से देखता है। आखिर एक दिन आया कि उसने तलाकनामा उसके हाथों में दिया और घर से बाहर निकाल दिया।

झूठी कहानी

कुछ समय से अल्पसंख्यक जातियां अपने अधिकारों की रक्षा के लिए जागृत हो रही थीं और उन्हें उस भयानक स्वप्न से जगाने वाली बहुसंख्यक जातियां थीं जो एक मुद्दत से अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए उन पर दबाव डाल रही थीं। इस जागृति की लहर ने कई संगठनों को जन्म दिया था: होटल के बैरों का संगठन, हज्जामों का संगठन, क्लर्कों का संगठन, पत्रकारों का संगठन। हर अल्पसंख्यक जाति या तो अपना संगठन बना चुकी थी या बना रही थी ताकि अपने अधिकारों की रक्षा कर सके।

ऐसे प्रत्येक संगठन की स्थापना पर समाचार पत्रों में समीक्षाएं होती थीं। बहुमत के समर्थक उनका विरोध करते थे और अल्पमत के पक्षपाती उसका समर्थन। गरज कुछ मासों से एक अच्छा-खासा हंगामा बर्पा था जिसमें रौनक बनी रहती थी। किन्तु एक दिन जब अखबारों में यह समाचार प्रकाशित हुआ कि देश के दस नम्बरिये गुण्डों ने भी अपना संगठन स्थापित कर लिया है तो बहुसंख्यक तथा अल्पसंख्यक दोनों जातियां बड़ी भयभीत हुईं। शुरू-शुरू में तो लोगों ने समझा कि पेपर को उड़ा दी है किसी ने पर जब उस संगठन ने अपने उद्देश्यादि प्रकाशित किये और एक नियमित विधान बनाया तो पता चला कि यह कोई मजाक नहीं बल्कि गुण्डे व बदमाश वास्तव में खुद को एक संगठन के नीचे संगठित व एकजुट करने का दृढ़ निश्चय कर चुके हैं।

इस संगठन की दो बैठकें हो चुकी थीं जिनकी रिपोर्टें अखबारों में छप चुकी थीं। लोग पढ़ते और विस्मित हो जाते। कुछ तो कहते प्रलय समीप है।

उनके बताये गये उद्देश्यों की लम्बी-चौड़ी सूची थी जिसमें यह कहा गया था कि गुण्डों और बदमाशों का यह संगठन सबसे पहले तो इस बात पर विरोध प्रकट करेगा कि समाज में उनको घृणा तथा हीन दृष्टि से देखा जाता है। वे भी दूसरों की भाँति बल्कि उनकी अपेक्षा कुछ अधिक शांतिप्रिय नागरिक हैं। उन्हें गुण्डे और बदमाश न कहा जाय, क्योंकि इससे उनका अपमान होता है। वे स्वयं अपने लिए कोई उचित नाम ढूँढ़ लेते किन्तु इस विचार से कि 'अपने मुँह मियां मिट्ठू' कहावत उन पर चरितार्थ न हो, वे इसका निर्णय जन-साधारण पर छोड़ते हैं। चोरी-चकारी, डकैती और लूट, जेब-तराशी और जालसाजी, सट्टेबाजी और ब्लैक-मार्केटिंग आदि की गणना कुकर्मों की अपेक्षा ललित कलाओं में होनी चाहिए। इन ललित कलाओं के साथ अब तक जो दुर्व्यवहार किया गया है उसका पूरा-पूरा बदला ही इस यूनियन का परम उद्देश्य है।

ऐसे ही कई और उद्देश्य थे जो सुनने और पढ़ने वालों को बड़े विचित्र प्रतीत होते थे। प्रगट में ऐसा था कि चन्द बेफिक्रे रसिकों ने लोगों के मनोरंजन के लिए ये सब बातें गढ़ी हैं। यह चुटकला ही तो मालूम होता था कि यूनियन अपने सदस्यों की कानूनी रक्षा का जिम्मा लेगी और उसकी गतिविधियों के लिए अनुकूल तथा सुखद वातावरण उत्पन्न करने के लिए पूरा-पूरा संघर्ष करेगी। वह वर्तमान अधिकारियों पर जोर देगी कि यूनियन के प्रत्येक सदस्य पर उसके स्थान तथा श्रेणी के अनुसार अभियोग चलाया जाय। सरकार लोगों को अपने घरों में चोरों का बिजली का अलार्म न लगाने दे। क्योंकि कभी-कभी यह घातक सिद्ध होता है। जिस प्रकार राजनीतिक बन्दियों को जेल में 'ए' तथा 'बी' क्लास की सुविधाएँ दी जाती हैं उसी प्रकार इस यूनियन के सदस्यों को दी जायें। यूनियन इस बात का भी जिम्मा लेती थी कि वह अपने सदस्यों को बुढ़ापे तथा अपंगुता, या किसी दुर्घटना का शिकार हो जाने की स्थिति में हर मास निर्वाह के लिए एक समुचित रकम देगी। जो सदस्य किसी विषय-विशेष में दक्षता प्राप्त करने के हेतु विदेश जाना चाहेगा उसे छात्रवृत्ति देगी आदि आदि। ....

जाहिर है कि अखबारों में इस यूनियन की स्थापना पर बहुत सी समीक्षाएँ हुईं। लगभग सभी इसके विरुद्ध थे। कुछ प्रतिक्रियावादी कहते थे कि यह कम्युनिज्म की चरम अवस्था है। और इसके सम्पादकों के डांडे क्रेमलिन से मिलाते थे। इसलिए सरकार से बार-बार प्रार्थना की जाती कि वह इस उपद्रव को फौरन कुचल दे; क्योंकि यदि इसे जरा भी पनपने का मौका दिया गया तो समाज में ऐसा जहर फैलेगा कि उसका निदान मिलना मुश्किल हो जाएगा।

लोगों का विचार था कि प्रगतिवादी इस यूनियन का पक्ष पोषण करेंगे क्योंकि इसमें एक नवीनता थी और प्राचीन मूल्यों से हट कर उसने अपने लिए एक नया रास्ता तलाश किया था और फिर यह कि प्रतिक्रियावादी इसे कम्युनिस्टों का आविष्कार समझते थे परन्तु आश्चर्य है कि अल्पसंख्यकों के वे सबसे बड़े पक्षपाती पहले तो इस मामले में खामोश रहे और बाद में दूसरों के समर्थक बन गये। और इस यूनियन के निर्मूल करने पर और देने लगे।

अखबारों में हंगामा बर्पा हुआ तो देश के कोने-कोने में इस यूनियन की स्थापना के विरुद्ध सभाएँ होने लगी। लगभग हर दल के प्रसिद्ध नेता ने मंच पर आकर सभ्यता व संस्कृति के इस कलंक रूपी संगठन को धिक्कारा। और कहा कि यही समय है जब तमाम लोगों को अपने आपस के झगड़े छोड़कर इस भीषण उपद्रव का सामना करने के लिए एकता तथा अटल विश्वास को अपना लक्ष्य बना कर डट जाना चाहिये।

इस सारे कोलाहल का जवाब यूनियन की ओर से एक पोस्टर द्वारा दिया गया जिसमें संक्षेप में यह कहा गया कि प्रेस बहुमत के हाथ में है, कानून उसका साथ देता है। किन्तु यूनियन का उत्साह तथा उसके निश्चय समाप्त नहीं हुए। वह प्रयत्न कर रही है कि बहुत-सी रकम देकर अखबार खरीद ले और उन्हें अपने पक्ष में करे।

यह पोस्टर देश भर की दीवारों पर लगाया गया तो फौरन बाद ही कई शहरों से बड़ी-बड़ी चोरियों और डकैतियों की सूचनाएं मिली। और उसके कुछ दिन बाद जब एकाएकी दो अखबारों ने दबी जबान से गुण्डों और बद-

कर्मों की यूनियन ने उद्देश्यों से गुमनामगार पत्र कुरेदना शुरू किया तो लोग समझ गये कि पर्दे के पीछे क्या हुआ है ?

उनके साप्ताहिक पत्रिकाओं में बड़े विचित्र विषयों पर लेख प्रकाशित होते थे जिनमें से ज्ञानवर्धन की सामग्री फैलाने वाले थे।

- आर्थिक दृष्टि से चोर मार्केटिंग के लाभ।
- सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से वेश्यालयों का महत्व।
- झूठ की स्मरण-शक्ति होती है—आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान।
- बच्चों में हत्या तथा लूट की स्वाभाविक प्रवृत्तियां।
- संसार के भयानक डाकू तथा धर्म की पवित्रता।

विज्ञापन भी कम विचित्र नहीं थे। उनमें विज्ञापक का नाम तथा पता नहीं होता था। शीर्षक देकर मतलब की बात संक्षेप में बता दी जाती थी। कुछ शीर्षक देखिए :

चोरी के जेवरात खरीदने से पहले हमारा निशान जरूर देख लिया करें जो खरे माल की गारण्टी है।

ब्लैक मार्केट में केवल उसी फिल्म के निकट बेचे जाते हैं जो मनोरंजन की सर्वश्रेष्ठ सामग्री प्रस्तुत करती है।

दूध में किन तरीकों से मिलावट की जाती है। 'दूध का दूध और पानी का पानी' नामक पत्रिका अवश्य पढ़िये।

एक अलग कालम में 'ब्लैक मार्केट के आज के भाव' के शीर्षक से उन तमाम चीजों की कण्ट्रोल्ड कीमत दर्ज होती थी जो केवल ब्लैक मार्केट से प्राप्त होती थीं। लोगों का कहना था कि इन कीमतों में एक पाई की भी कमी-बेशी नहीं होती। जो छिपे-चोरी चोरी का खास निशान लगा हुआ माल खरीदते थे उन्हें सस्ते दामों पर सोलह आने खरा माल मिलता था।

गुण्डों, चोरों और व्यभिचारियों की यूनियन जब धीरे-धीरे ख्याति तथा सहानुभूति प्राप्त करने लगी तो शासनाधिकारियों की चिन्ता और बढ़ गई। सरकार ने अपनी ओर से गुप्त रूप से बहुत प्रयत्न किया कि उसके अड्डे का पता चलाये लेकिन वह विफल रही। यूनियन की सारी गति-

विधियां भूमिगत अर्थात् अण्डर ग्राउण्ड थी । उच्च वर्ग के कुछ लोगों का विचार था कि पुलिस के कुछ भ्रष्टाचारी अफसर इस यूनियन से मिले हुए हैं, बल्कि इसके नियमित रूप से सदस्य हैं। किन्तु यह बात विचारणीय थी कि जनता में जो इस यूनियन की स्थापना से बेचैनी फैली थी अब बिल्कुल खत्म हो चुकी थी । मध्यम वर्ग उसकी गतिविधियों में बड़ी दिलचस्पी ले रहा था। केवल उच्च वर्ग था जो दिन-ब-दिन भयभीत होता जा रहा था।

इस यूनियन के विरुद्ध यों तो आये दिन भाषण होते थे और जगह-जगह सभाएँ होती थी, किन्तु अब वह पहला सा उत्साह नहीं था। अतएव उसे पुनर्जीवित करने के लिए टाऊन हाल में एक विराट सभा के आयोजन की घोषणा की गई। नगर के लगभग सभी प्रतिष्ठित व्यक्तियों को प्रतिनिधित्व के लिए निमन्त्रित किया गया था। इस सभा का उद्देश्य यह था; एकमत से गुण्डों और व्यभिचारियों की इस यूनियन के विरुद्ध निन्दा का प्रस्ताव पास किया जाय और जन साधारण को इन भयानक कीटाणुओं से यथासम्भव अवगत कराया जाय जो इसके अस्तित्व के कारण सामाजिक तथा सामूहिक क्षेत्र में फैल चुके हैं और बड़ी तीव्र गति से फैल रहे हैं।

सभा के आयोजन पर हजारों रुपये खर्च किये गये। कार्यकारिणी तथा स्वागत-समिति ने सुविधा के लिए हर सम्भव यत्न किया। कई अधिवेशन हुए और वे बड़े सफल रहे। उनकी रिपोर्ट यूनियन के अखबारों में शब्दशः प्रकाशित होती रही। निंदा के जितने प्रस्ताव पास हुए बिना टीका-टिप्पणी छपते रहे। दोनों अखबारों में उन्हें विशेष स्थान दिया जाता था।

अन्तिम अधिवेशन बहुत महत्वपूर्ण था—देश की तमाम सम्मिलित एवं प्रतिष्ठित विभूतियां एकत्रित थी। धनिक तथा मन्त्री आदि मौजूद थे। सरकार के उच्चाधिकारियों को भी निमन्त्रण दिया गया था । धुआंधार भाषण हुए और धार्मिक, सामूहिक, आर्थिक, सौन्दर्यात्मक, मनोवैज्ञानिक संक्षेप में हर सम्भव ढंग से गुण्डों और बदमाशों के संगठन के विरुद्ध तर्क प्रस्तुत किये गये और सिद्ध कर दिया गया कि निचले वर्ग का अस्तित्व मानव जीवन के लिये विष के समान है। निंदा का अन्तिम प्रस्ताव जो बड़े सबल शब्दों में लिखा

गया था, एकाएक से शान्त हो गया तो हाल तालियों के शोर से गूंज उठा। जब कुछ शांति हुई तो पिछले बेंचों में एक व्यक्ति खड़ा हुआ। उसने सभापति से सम्बोधन करते कहा —'सभापति महोदय जी यदि आज्ञा हो तो मैं कुछ निवेदन करूं।'

सारे हाल की निगाहें उस आदमी पर जम गईं। सभापति ने बड़े रौब से पूछा, 'मैं पूछ सकता हूं आप कौन हैं?'

उस व्यक्ति ने जो, बड़े साधारण, किन्तु सुन्दर वस्त्र पहने हुए था, आदर के साथ कहा, 'देश तथा जाति का एक निकृष्ट सेवक।' और उसने झुककर प्रणाम किया।

सभापति ने चश्मा लगाकर उसे गौर से देखा और पूछा, 'आप क्या कहना चाहते हैं?'

इस पहेलीनुमा व्यक्ति ने मुस्कराकर कहा, 'हम भी मुँह में जबान रखते हैं।'

इस पर सारे हाल में खुसर-पुसर होने लगी। विशेष कर मंच पर बैठे सब-के-सब प्रतिष्ठित लोग तथा नेतागण प्रश्नसूचक चिन्ह बनाकर एक-दूसरे की ओर देखने लगे।

सभापति ने अपने रौब को कुछ और रौबदार बनाते हुए पूछा, 'आप कहना क्या चहाते हैं?'

'मैं अभी अर्ज करता हूं।' यह कहकर उसने जेब से एक बेदाग रूमाल निकाला, अपना मुँह साफ किया और उसे वापिस जेब में रखकर बड़े पार्लमेण्टेरियन ढंग से कहने लगा, 'सभापति जी और सम्मानीय सज्जनगण,' डायस के एक ओर देखकर वह रुक गया। 'क्षमा याचना करता हूं—आदरणीया श्रीमती मर्जबान आज हमेशा के विपरीत पिछले सोफे पर विराजमान हैं। सभापति महोदय, आदरणीया देवी जी तथा सज्जनगण।'

श्रीमती मर्जबान ने वेनिटी वेग में से आईना निकालकर अपना मेकअप देखा और गौर से सुनने लगी। बाकी सब भी ध्यानपूर्वक सुन रहे थे।

सारे हाल में खुसर-पुसर होने लगी। सभापति की नाक के बांसे पर चश्मा फिसल गया, 'आप हैं कौन?'

सिर के एक हल्के से झुकाव के साथ उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, 'देश तथा जाति का एक निकृष्ट सेवक। निचले वर्ग के संगठन का एक सदस्य जिसे उसके प्रतिनिधित्व का गर्व प्राप्त है।'

हाल में किसी ने जोर से, 'वाह' कहा और ताली बजाई। चोरों, उचक्कों और गुण्डों की यूनियन के प्रतिनिधि ने सिर को फिर एक हल्का झटका दिया, और कहना शुरू किया, 'क्या अर्ज करूं, कुछ कहा नहीं जाता :

कौ गया भी मैं तो उनकी गालियों का क्या जवाब

याद थी जितनी दुआएं सर्फ़-ेदरबाँ हो गई

इस अधिवेशन में इस संगठन के विरुद्ध जिसका यह सेवक प्रतिनिधि है, इतनी गालियाँ दी गई हैं, उसे इतना धिक्कारा गया है कि सिर्फ इतना कहने को जी चाहता है :

सो वी भी कहते हैं कि ये बेनंगो-नाम है

'सभापति जी, आदरणीय श्रीमती मर्जबान और सज्जनों'

श्रीमती मर्जबान की लिपस्टिक मुस्कराई। बोलने वाले ने आँखें और सिर झुकाकर प्रणाम किया। 'श्रद्धेय श्रीमती मर्जबान और सज्जनों! मैं जानता हूँ कि यहाँ मेरी यूनियन का कोई हमदर्द मौजूद नहीं। आप में से एक भी ऐसा नहीं जो हमारा पक्ष पोषण करे।

दोस्तगर कोई नहीं है जो करे चारागारी

न सही लेक तमन्नाए दवा है तो सही

डायस पर एक अधकनपोन रईस कल्ले में पान दबाते हुए बोले, 'फिर!'

सभापति ने जब उनकी ओर घृणा की दृष्टि से देखा तो वह खामोश हो गये।

चोरों और भ्रष्टाचारियों की यूनियन के प्रतिनिधि के पतले-पतले होठों पर श्वेत मुस्कान प्रकट हुई। 'मैं अपने संक्षिप्त भाषण में जो शेर भी पढ़ूंगा, 'ग़ालिब' का होगा।'

श्रीमती मर्जबान ने बड़े भोलेपन से कहा, 'आप तो बड़े योग्य व्यक्ति मालूम होते हैं।'

बोलने वाले ने झुककर प्रणाम किया और कहा :

> सीखे हैं मेहरुखों के लिये हम मुसव्विरी
> तकरीब कुछ तो बहरे-मुलाकात चाहिए

सारा हाल कहकहों और तालियों से गूंज उठा। श्रीमती मर्जबान ने उठकर सभापति के कान में कुछ कहा, जिससे श्रोताओं को शांत रहने की आज्ञा दी। शांति हुई तो चोरों और लफंगों की यूनियन के प्रतिनिधि ने फिर बोलना शुरू किया :

'मैं अपना खेद प्रकट किये बिना नहीं रह सकता कि उस वर्ग के साथ जिसका प्रतिनिधित्व मेरी यूनियन करती है, बहुत अन्याय हुआ है उसे अब तक बिल्कुल गलत रंग में दिखाया जाता रहा है और यही कोशिश की जाती रही है कि इसे घृणित तथा निन्दित ठहराकर समाज से बहिष्कृत कर दिया जाय। मैं उन महानुभावों को क्या कहूँ जिन्होंने इस शरीफ और सम्मानित वर्ग पर पथराव करने के लिए पत्थर उठाये हैं ?

> आतिशकदा है सीना मिरा राजे-निहां से
> ऐ वाये अगर मारिजे-इजहार में आवे'

सभापति ने एकदम गरजकर कहा, 'खामोश ! बस अब आपको अधिक कुछ कहने की आज्ञा नहीं है।'

वक्ता ने मुस्करा कर कहा, 'हजरते 'गालिब' की इसी गजल का एक शेर है :

> दे मुझको शिकायत की इजाजत कि सितमगर
> कुछ तुझको मजा भी मिरे आजार में आये'

हाल तालियों के शोर से गूंज उठा। सभापति ने अधिवेशन समाप्त करना चाहा लेकिन लोगों ने कहा कि नहीं। चोरों और गुण्डों की यूनियन के प्रतिनिधि का भाषण समाप्त हो जाये तो कार्रवाई बन्द की जाय। सभापति तथा अधिवेशन के अन्य सदस्यों ने पहले स्वीकृति प्रकट न की, किन्तु बाद में जनमत के सामने उन्हें झुकना पड़ा। वक्ता को बोलने की अनुमति मिल गई।

उसने सभापति का समुचित शब्दों में आभार प्रकट किया और कहना आरम्भ किया :

'हमारी यूनियन को केवल इसलिए घृणा तथा हीन दृष्टि से देखा जाता है कि यह चोरों, उठाईगीरों, लुटेरों और डाकुओं की यूनियन है जो उनके अधिकारों की रक्षा के लिए स्थापित की गई है मैं आप लोगों की भावनाओं से भली प्रकार परिचित हूँ। हमारी स्थापना पर आपकी जो प्रतिक्रिया हुई थी, उसकी भी मैं कल्पना कर सकता हूं। किन्तु क्या चोरों, डाकुओं और लुटेरों के कोई अधिकार नहीं होते ? या नहीं हो सकते ? मैं समझता हू कोई सही दिमाग वाला व्यक्ति ऐसा नहीं सोच सकता। जिस प्रकार आप सबसे पहले इन्सान है और बाद में सेठ साहब हैं, बड़े धनवान हैं, म्युनिसिपल कमिश्नर है, गृह मंत्री हैं या विदेश मंत्री; इसी प्रकार वह भी सबसे पहले आप ही की तरह इन्सान है। चोर, डाकू उठाईगीरा, जेब कतरा और ब्लैक-मार्केटियर बाद में हैं। जो अधिकार दूसरे इन्सानों को इस सृष्टि में प्राप्त हैं, वे उसे भी प्राप्त हैं और होने चाहिएँ। जो उपहार दूसरे इन्सानों को मिलते हैं, उसे भी उन्हें प्राप्त करने का अधिकार है। मैं यह समझने में असमर्थ हूँ कि एक चोर या डाकू को क्यों ललित कला से वंचित समझा जाता है। क्यों उसे एक ऐसा व्यक्ति समझा जाता है जिसे साधारण जीवन को व्यतीत करने का अधिकार नहीं। क्षमा कीजिये वह एक अच्छा शेर सुनकर उसी तरह फड़क उठता है, जिस तरह कोई दूसरा उसे समझने वाला। 'सुबहे-बनारस' और 'शामे-अवध' से सिर्फ आप ही आनन्द-लाभ नहीं कर सकते वह भी करता है, सुर-ताल की उसे भी खबर है। वह केवल पुलिस के हाथों ही गिरफ्तार होना नहीं जानता, किसी सुन्दरी के प्रेम-जाल में फंसने का ढंग भी वह जानता है। शादी करता है बच्चे पैदा करता है, उन्हें चोरी से मना करता है, झूठ बोलने से रोकता है। भगवान न करे यदि उनमें से कोई मर जाये तो उसके दिल को सदमा भी पहुँचता है।'

यह कहते हुए उसका गला रुंध गया। लेकिन फौरन ही उसने रुख बदला और मुस्कराते हुए कहा, 'हजरते गालिब' के इस शेर का जो मजा वह ले सकता है, माफ कीजिये आप में से कोई नहीं ले सकता :

न लुटता दिन को तो कब रात को यूं बेखबर सोता
रहा खटका न चोरी का दुआ देता हूं रहज़न को

सारा हाल हँसने लगा। श्रीमती मर्जबान भी जो भाषण के अन्तिम भाग पर कुछ खिन्न-सी हो गई थीं, मुस्कराईं। वक्ता ने उसी प्रकार पतली पतली नाक मुस्कराहट के साथ कहना शुरू किया, 'मगर अब ऐसे दुआ देने वाले कहां?'

श्रीमती मर्जबान ने बड़े भोलेपन से आह भरकर कहा, 'और वे डाकू भी कहां?'

वक्ता ने स्वीकार किया, 'आपने ठीक फर्माया श्रीमती मर्जबान। हमें इस दुखद तथ्य का पूर्ण अनुभव है। यही कारण है कि हमने मिलकर अपनी यूनियन बना डाली है। समय परिवर्तन के साथ डाकू, चोर और जेब कतरे लगभग सभी अपनी पुरानी प्रथा तथा प्रतिष्ठा को भूल गये हैं। किन्तु हर्ष का स्थान है कि अब बहुत तेजी से अपने असल स्थान को लौट रहे हैं। लेकिन मैं उन महाशयों से जो इन बेचारों की जड़ें खोदने में व्यस्त हैं, यह धृष्टतापूर्ण प्रश्न पूछना चाहता हूं कि अपने सुधार के लिए अब तक उन्होंने क्या किया है? मुझे कहना तो नहीं चाहिए, लेकिन तुलना के लिए कहना पड़ता है कि हमें बहुत हेय चोर और दुष्ट डाकू कहा जाता है। मगर वे लोग क्या हैं? कुछ इस ऊँचे डायस पर भी बैठे हैं, जो जनता का माल-मत्ता दोनों हाथों से लूट रहे हैं!'

हाल में 'शेम! शेम!' के नारे बुलन्द हुए।

वक्ता ने कुछ रुककर फिर कहना शुरू किया: 'हम चोरी करते हैं, डाके डालते हैं मगर उसे कोई और नाम नहीं देते। ये सम्मानित लोग निकृष्टतम प्रकार के डाके डालते हैं किन्तु यह जायज समझा जाता है। अपनी आँख के इस लम्बे-चौड़े और भारी भरसक फूले को कोई नहीं देखता और न देखना चाहता है, क्यों? यह बड़ा गुस्ताख सवाल है। मैं इसका जवाब सुनना चाहता हूं, चाहे वह इससे भी ज्याद गुस्ताख हो।' थोड़ी देर रुककर वह मुस्कराया, 'मंत्री गण अपने मंत्रालय की मसनद की सान पर उस्तरा तेज करके देश की हर

गोद हराया करते हैं। यह कोई अपराध नहीं। लेकिन किसी कि जेब से बड़ी सफाई के साथ बटुआ चुराने वाला प्रशंसनीय है'''इस को छोड़िये, मुझे उस पर कोई आपत्ति नहीं। वह आपकी दृष्टि में गर्दन उड़ा देने योग्य है।'

सभा पर बहुत से लोग बेचैन से हो गये। श्रीमति सक्सेना बहुत प्रफुल्लित थीं।

वक्ता ने अपना गला साफ किया, फिर कहना शुरू किया, 'तमाम महकमों में ऊपर से लेकर नीचे तक रिश्वत का बाजार गर्म है, यह किसे मालूम नहीं? क्या यह भी कोई भेद है जिसके खोलने की जरूरत है कि नगरपालिका और परिवार-शासन के कारण सर्वथा अयोग्य, अशिष्ट और भ्रष्टाचारी बड़े-बड़े ओहदे सँभाले बैठे हैं? माफ फरमाइयेगा इधर हमारे वर्ग में ऐसी दुखदाई परिस्थितियाँ नहीं हैं। कोई चोर अपने किसी सम्बन्धी को सही चोरी के लिए नहीं चुनेगा।' हमारे यहाँ लोग इस प्रकार की रियायतों से लाभ उठाना चाहें तो नहीं उठा सकते। इसलिए कि चोरी करने, जेब काटने या डाका डालने के लिए दिल-गुर्दे, साहस तथा योग्यता की आवश्यकता है। यहाँ कोई सिफारिश काम नहीं आती। हर व्यक्ति का काम ही स्वयं उसकी परीक्षा होती है जो फौरन उसे परिणाम से अवगत करा देता है।'

हाल पर कब्र की सी खामोशी छा गई। वक्ता ने अपनी जेब से रूमाल निकालकर मुँह साफ किया और उसे हवा में लहराकर कहा, 'सभापति जी, अदेव देवी जी तथा महानुभावो! मुझे माफ फरमाइए कि मैं जरा भावुकता में बह गया। निवेदन यह है कि जिस तरफ नजर उठाई जाये ईमान-फरोश होता है या जमीर-फरोश, वतन-फरोश होता है या कौम-फरोश। समझ में नहीं आता कि ये भी कोई बेचने की चीजें हैं? इन्सान तो उन्हें बहुत ही कठिन समय में भी एक क्षण के लिए किसी नहीं रख सकता मगर मैं इन्सानों की बात कर रहा हूँ। माफ कीजिये मेरे स्वर में फिर कटुता पैदा हो गई।

रखियो ग़ालिब मुझे इस तल्ख नवाई में मुआफ़
आज कुछ दर्द मिरे दिल में सिवा होता है।

यह कहता हुआ वह श्रोता की तरफ मुड़ा। सभापति महोदय, श्रीमति

सर्वोवाल तथा महाशयो ! मैं अपनी यूनियन की ओर से आप सबको धन्यवाद देता हूं कि आपने मुझे बोलने का अवसर दिया।' आसन के पास पहुंचकर उसने सभापति की ओर हाथ बढ़ाया। मैं अब एक मित्र के रूप में आपसे विदा होना चाहता हूं।'

सभापति ने हिचकिचाते हुए उठकर उससे हाथ मिलाया। उसके बाद उसने श्रीमति सर्वोवाल की ओर हाथ बढ़ाया। 'यदि आपको कोई आपत्ति न हो।'

श्रीमति सर्वोवाल ने भोलेपन से अपना हाथ पेश कर दिया। शेष गण्यमान्य व्यक्तियों तथा सदस्यों से हाथ मिलाकर जब वह निवृत्त हुआ तो नमस्कार कहकर चलने लगा। लेकिन फौरन ही रुक गया। अपनी दोनों जेबों में से उसने बहुत सी चीजें निकालीं और सभापति की मेज पर एक-एक करके रख दीं, फिर वह मुस्कराया, 'एक अर्से से जेब तराशी छोड़ चुका हूं, आजकल सेफ तोड़ना मेरा पेशा है। आज सिर्फ मनोविनोद के लिए आप लोगों की जेबों पर हाथ साफ कर दिया।' यह कहकर वह श्रीमति सर्वोवाल से संबोधित हुआ, 'श्रद्धेय देवीजी ! क्षमा कीजिये, आपके वेनिटी बैग में से मैंने एक चीज निकाली थी मगर वह ऐसी है कि सबके सामने आपको वापिस नहीं कर सकता।'

और वह तेजी के साथ से बाहर निकल गया।

सड़क के किनारे

यही दिन थे; आकाश उसकी आँखों की भाँति ऐसा ही नीला था जैसा कि आज है, धुला हुआ, निखरा हुआ। और धूप भी ऐसी ही कुनकुनी थी—सुहाने सपनों की भाँति; मिट्टी की गंध भी ऐसी ही थी जैसी कि इस समय मेरे दिल व दिमाग में रच रही है ' ....और मैंने इसी प्रकार लेटे-लेटे अपनी फड़फड़ाती हुई आत्मा उसके हवाले करदी थी ।

'उसने मुझसे कहा था, "....तुमने मुझे जो ये क्षण प्रदान किये हैं विश्वास करो मेरा जीवन इनसे वंचित था। जो रिक्त स्थान तुमने आज मेरे जीवन में पूरे किये हैं तुम्हारे आभारी हैं। तुम मेरी जिन्दगी में न आती तो शायद वह हमेशा अधूरी रहती ।....मेरी समझ में नहीं आता । मैं तुमसे और क्या कहूँ मेरी पूर्ति हो गई है, ऐसी पूर्णता के साथ कि अनुभव होता है मुझे अब तुम्हारी आवश्यकता नहीं रही" ।' और वह चला गया, हमेशा के लिए चला गया।

'मेरी आँखें रोईं', मेरा दिल रोया मैंने उसकी मिन्नत-समाजत की। उससे लाख बार पूछा कि मेरी जरूरत अब तुम्हें क्यों न रही ' जबकि तुम्हारी जरूरत अपनी पूरी-तीव्रता के साथ अब आरम्भ हुई है। उन क्षणों के पश्चात् जिन्होंने तुम्हारे ही कथनानुसार तुम्हारी हस्ती की खाली जगहें भरी हैं।

'उसने कहा, 'तुम्हारे अस्तित्व के जिस-जिस कण की मेरे जीवन की पूर्ति तथा निर्माण को आवश्यकता थी" ये क्षण चुन-चुनकर देते रहे"' अबकि उसकी पूर्ति हो गई है तुम्हारा और मेरा नाता अपने आप समाप्त हो गया है।'

'उसने कुछ शब्द थे···मुझसे यह अपमान सहन न किया गया··· मैं चीख-चीख कर रोने लगी। परन्तु उस पर कुछ प्रभाव न पड़ा।··· मैंने उससे कहा, 'ये क्षण जिनमें तुम्हारे अस्तित्व की पूर्ति हुई है मेरे अस्ति के अंग थे। क्या उनका मुझसे कोई सम्बन्ध नहीं ?······ क्या मेरे अस्ति का शेष भाग उसमें समाया जाना और रहना है ?·····तुम पूर्ण हो हो······लेकिन मुझे अधूरी करके·····क्या मैंने तुम्हें इसीलिए अप भगवान् बनाया था ?'

'उसने कहा, 'भौंरे कलियों और फूलों का रस चूस-चूस कर शहद संचि है, किन्तु वे उसकी सलहट तक भी इन फूलों और कलियों के होंठों तक न जाते। ' भगवान अपनी पूजा कराता है पर स्वयं आराधना नहीं करता पत्थर के साथ एकान्त में कुछ क्षण व्यतीत करके उसने अस्तित्व की पूर्ति ···किन्तु अब कहां है ?···उसको अब अस्तित्व की क्या आवश्यकता है ? व एक ऐसी मां थी जो अस्तित्व को जन्म देते ही प्रसूतिगृह में ही समाप्त गई थी।

'नहीं रो सकती है···तर्क नहीं कर सकती। इसकी सबसे बड़ी दली उसकी आंख से ढलका हुआ आंसू है······। मैंने उससे कहा, 'देखो···मैं र रही हूं···मेरी आंखें आंसू बरसा रही हैं। तुम जा रहे हो तो जाओ, परन्त इनमें से कुछ आंसुओं को तो अपने रूमाल के कफन में लपेट कर साथ लेत जाओ !··· ··मैं तो सारी उम्र रोती रहूंगी······मुझे इतना तो याद रहेग कि कुछ आंसुओं के कफन-दफन का सामान तुमने भी किया था···मुझे खुश करने के लिए !

'उसने कहा, मैं तुम्हें खुश कर चुका हूं······तुम्हें उस ठोस उल्लास से मिला चुका हूं जिसको तुम केवल मरीचिका ही देखा करती थी, क्या उसका हर्ष, उसका आनन्द तुम्हारे जीवन के शेष क्षणों का सहारा नहीं बन सकता ? तुम कहती हो कि मेरी पूर्ति ने तुम्हें अपूर्ण कर दिया है, लेकिन क्या यह अपूर्ति ही तुम्हारे जीवन को सक्रिय रखने के लिए काफी नहीं··· मैं मर्द हूं आज तुमने मेरी पूर्ति की है···कल कोई और करेगा···।

मेरा अधिकार हुआ, ऐसे पानी तथा मिट्टी से बना है जिसकी जिन्दगी में ऐसे कई क्षण आयेंगे जब वह गुर को अपूर्ण समझेगा······और तुम जैसी कई स्त्रियां आयेंगी जो इन क्षणों को उत्पन्न की हुई खाली जगहें भरेंगी।'

'मैं सोचती रही, मुस्काती रही।

'मैंने सोचा कि ये कुछ क्षण जो अभी-अभी मेरी मुट्ठी में थे···नहीं··· मैं इन क्षणों की मुट्ठी में थी··· मैंने क्यों गुर को उनके हवाले कर दिया? मैंने क्यों अपनी फड़फड़ाती आत्मा उनके मुँह खोले भँवर में डाल दी···उनमें आनन्द था, एक मज़ा था··· एक उन्माद था··· था, ज़रूर था और वह उसके और मेरे टकराव में था लेकिन···वह क्या कि वह क़ायम न क़ायम रहा और मुझसे तरेड़े पड़ गये··· यह क्या कि वह अब मेरी आवश्यकता अनुभव नहीं करता। पर मैं तो और भी तीव्रता से उसकी आवश्यकता अनुभव करती हूँ। वह मगन बन गया है। मैं दुर्बल हो गई हूँ। यह क्या कि आकाश पर दो बादल एक-दूसरे का आलिंगन करें—एक रो-रोकर बरसने लगा और दूसरा बिजली का कौंध बनकर उस वर्षा में चमकता कुदकड़े लगाता भाग जाये···यह किसका क़ानून है? आत्माओं का? ज़मीनों का या उनके बनाने वालों का?'

'मैं सोचती रही और मुस्काती रही।

'दो आत्माओं का सिमटकर एक हो जाना और एक होकर निस्सीम विस्तार ग्रहण कर जाना, क्या यह एक कविता नहीं है?······नहीं दो आत्माएँ सिमटकर निकम्मी हो इस नन्हें-से बिन्दु पर पहुँचती हैं जो फैलकर ब्रह्माण्ड बनता है······लेकिन इस ब्रह्माण्ड में एक आत्मा क्यों कभी-कभी घायल छोड़ दी जाती है क्या इस अपराध पर कि उसने दूसरी आत्मा को इस नन्हें से बिन्दु पर पहुँचने में मदद दी।

'यह कैसा संसार है!

'यही दिन थे, आकाश उसकी आँखों की भाँति ऐसा ही नीला था जैसा कि आज है······और धूप भी ऐसी ही कुनकुनी थी···और मैंने इसी प्रकार लेटे-लेटे अपनी फड़फड़ाती हुई आत्मा उसके हवाले कर दी थी···वह

मौजूद नहीं है···बिजली का कौंदा बनकर न जाने यह किन बदलियों के साथ खेल रहा है·····अपनी पूर्ति करके चला गया······एक साँप था जो मुझे डस कर चला गया।···किन्तु अब उसकी छोड़ी हुई लकीर क्यों मेरे पेट में करवटें ले रही है···क्या यह मेरी पूर्ति हो रही है ?

'नहीं, नहीं··· यह कैसे पूर्ति हो सकती है··· यह तो ध्वंस है···किन्तु मेरे शरीर के रिक्त स्थान क्यों भर रहे हैं···ये जो गढ़े थे किस मलबे से पूरे किये जा रहे हैं। मेरी रगों में ये कैसी सरसराहटें दौड़ रही हैं··· मैं सिमटकर अपने पेट में किस नन्हें-से बिन्दु पर पहुँचने के लिए पेचोताब खा रही हूँ···मेरी नाव डूबकर अब किन समुद्रों में उभरने के लिए उठ रही है·········?

'ये मेरे अन्दर दहकते हुए चूल्हों पर किस अतिथि के लिए दूध गरम किया जा रहा है···यह मेरा दिल मेरे खून को धुनक-धुनक करके किसके लिए नर्म व नाजुक रजाइयाँ तैयार कर रहा है। यह मेरा दिमाग मेरे विचारों के रंग-बिरंगे धागों से किसके लिए नन्हीं-मुन्नी पोशाकें बुन रहा है ?

'मेरा रंग किसके लिए निखर रहा है······मेरे अंग-अंग और रोम-रोम में फँसी हुई हिचकियाँ लोरियों में क्यों तब्दील हो रही हैं·······

'यही दिन थे, आकाश उसकी आँखों की भाँति ऐसा ही नीला था जैसा कि आज है···लेकिन यह आस्मान अपनी ऊँचाइयों से उतरकर क्यों मेरे पेट में तन गया है ?···इसकी नीली-नीली आँखें क्यों मेरी नाड़ियों में दौड़ती-फिरती हैं ?

'मेरे सीने की गोलाइयों में, मस्जिदों के मेहराबों में ऐसी पवित्रता क्यों आ रही है ?

'नहीं-नहीं···यह पवित्रता कुछ भी नहीं। मैं इन मेहराबों को ढा दूँगी···मैं अपने अन्दर तमाम चूल्हे ठण्डे कर दूँगी जिन पर बिन बुलाये मेहमान की आवभगत चढ़ी है। मैं अपने विचारों के सारे रंग-बिरंगे धागे आपस में उलझा दूँगी।······

'यही दिन थे, आसमान उसकी आँखों की तरह ऐसा ही नीला था जैसा कि आज है'''लेकिन मैं वह दिन क्यों याद करती हूं जिनके सोने पर से वह अपने पद चिन्ह भी उठा कर ले गया था'''

'लेकिन'''यह पद-चिन्ह किसका है ? यह जो मेरी पेट की गहराईयों में तड़प रहा है'''? क्या यह मेरा जाना-पहचाना नहीं'''

'मैं इसे खुरच दूंगी ''' इसे मिटा दूंगी। यह रसौली है, फोड़ा है—बहुत भयानक फोड़ा।

'लेकिन मुझे अनुभव होता है कि यह फाहा है'' फाहा है तो किस जख्म का ? उस जख्म का जो वह मुझे लगाकर चला गया था ? नहीं नहीं, यह तो ऐसा लगता है किसी पैदायशी जख्म के लिए है।'''ऐसे जख्म के लिए जो मैंने कभी देखा ही नहीं था'''जो मेरी कोख में न जाने कब से सो रहा था।

यह कोख क्या ?'''फिजूल-सी मिट्टी की हडकुलिया, बच्चों का खिलौना। मैं इसे तोड़-फोड़ दूंगी।

'लेकिन यह कौन मेरे कान में कहता है, वह दुनिया एक चौराहा है''' अपना भांडा क्यों इसमें फोड़ती है ''याद रख तुझ पर उंगलियाँ उठेंगी।' ।'

'उंगलियां''''उधर क्यों न उठेंगी जिधर वह अपनी हस्ती पूरी करके चला गया था—? क्या उन उंगलियों को वह रास्ता मालूम नहीं ?' यह '''दुनिया एक चौराहा है'''लेकिन उस समय तो वह मुझे एक दोराहे पर छोड़ कर चला गया था—इधर भी अधूरापन था, उधर भी अधूरापन —इधर भी आंसू, उधर भी आंसू।

'लेकिन यह किसका आंसू मेरे सीप में मोती बन रहा है—यह कहां बिन्धेगा ?

उंगलियाँ उठेंगी। जब सीप का मुंह खुलेगा और मोती फिसल कर बाहर चौराहे पर गिर पड़ेगा तो उंगलियाँ उठेंगी—सीपी की ओर भी और मोती की ओर भी'''और ये उंगलियाँ संपोलिया बन कर उन दोनों को डसेंगी और अपने विष से उनको नीला कर देंगी।

'वही दिन थे, आकाश उनकी आंखों की भांति ऐसा ही नीला था जैसा कि आज है…यह गिर क्यों नहीं जाता…ये कौन से स्तंभ हैं जो इसे संभाले हुए हैं ? क्या उस दिन जो भूकम्प आया था वह इन स्तंभों की बुनियादें हिला देने के लिए काफी नहीं था…यह क्यों अब तक मेरे सिर के ऊपर उसी तरह तना हुआ है ?

'मेरी आत्मा पसीने में डूबी हुई है…उसका हर मसाम खुला हुआ है। चारों ओर आग दहक रही है मेरे अन्दर घटाली में सोना पिघल रहा है। …धौंकनियां चल रही हैं, शोले भड़क रहे हैं। सोना आग उगलने वाले ज्वालामुखी के लावे की नाईं उबल रहा है। मेरी नसों में नीली आंखें दौड़-दौड़ कर हांफ रही हैं…घण्टियां बज रही हैं…कोई आ रहा है…कोई आ रहा है। बन्द करदो, बन्द करदो किवाड़…।

'घटाली उलट गई है…पिघला हुआ सोना बह रहा है…घण्टियां बज रही हैं…वह आ रहा है…मेरी आंखें मुंद रही हैं…नीला आकाश गदला होकर नीचे आ रहा है।…

'यह किसके रोने की आवाज है…इसे चुप कराओ…उसकी चीखें मेरे दिल पर हथौड़े मार रही हैं। चुप कराओ, इसे चुप कराओ, इसे चुप कराओ मैं गोद बन रही हूं…मैं क्यों गोद बन रही हूं…?

'मेरी बांहें खुल रही हैं। चूल्हों पर दूध उबल रहा है। मेरे सोने की गोलाइयां प्यालियां बन रही हैं…लाओ इस गोश्त के लोथड़े को मेरे दिल के धुनके हुए खून के नर्म-नर्म गालों में लिटा दो।

'मत छीनो ! मत छीनो इसे मुझसे…अलग न करो ! खुदा के लिए मुझसे अलग मत करो !

'उंगलियां…उंगलियां…उठने दो उंगलियां। मुझे कोई चिन्ता नहीं…यह दुनियां चौराहा…फूटने दो मेरी जिन्दगी के तमाम भांडे……।

'मेरा जीवन नष्ट हो जायेगा ?…हो जाने दो…मुझे मेरा गोश्त वापस दे दो…मेरी आत्मा का यह टुकड़ा मुझसे मत छीनो ें

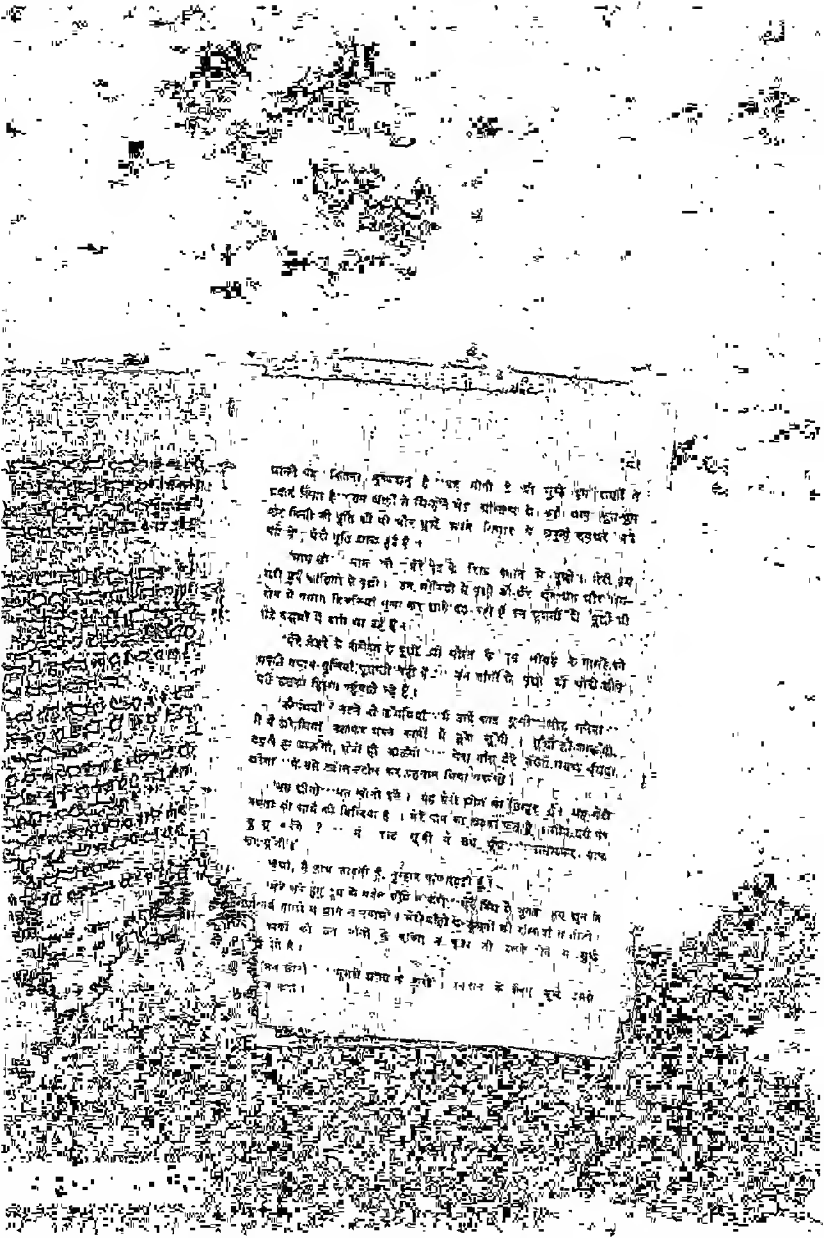

'वही दिन थे, आकाश उनकी आंखों की भांति ऐसा ही नीला था जैसा कि आज है…यह गिर क्यों नहीं जाता…ये कौन से स्तंभ हैं जो इसे संभाले हुए हैं ? क्या उस दिन जो भूकम्प आया था वह इन स्तंभों की बुनियादें हिला देने के लिए काफी नहीं था…यह क्यों अब तक मेरे सिर के ऊपर उसी तरह तना हुआ है ?

'मेरी आत्मा पसीने में डूबी हुई है…उसका हर मसाम खुला हुआ है। चारों ओर आग दहक रही है मेरे अन्दर घटाली में सोना पिघल रहा है। …धौंकनियां चल रही हैं, शोले भड़क रहे हैं। सोना आग उगलने वाले ज्वालामुखी के माथे की नाईं उबल रहा है। मेरी नसों में नीली आंखें दौड़-दौड़ कर हांफ रही हैं…घण्टियां बज रही हैं…कोई आ रहा है…कोई आ रहा है। बन्द करदो, बन्द करदो किवाड़…।

'घटाली उलट गई है…पिघला हुआ सोना बह रहा है…घण्टियां बज रही हैं…वह आ रहा है…मेरी आंखें मुंद रही हैं…नीला आकाश गदला होकर नीचे आ रहा है।….

'यह किसके रोने की आवाज है…इसे चुप कराओ…उसकी चीखें मेरे दिल पर हथौड़े मार रही हैं। चुप कराओ, इसे चुप कराओ, इसे चुप कराओ मैं गोद बन रही हूं…मैं क्यों गोद बन रही हूं…?

'मेरी बांहें खुल रही हैं। चूल्हों पर दूध उबल रहा है। मेरे सोने की कोलाइयां प्यालियां बन रही हैं…लाओ इस गोश्त के लोथड़े को मेरे दिल के धुनके हुए खून के नर्म-नर्म गालों में लिटा दो।

'मत छीनो ! मत छीनो इसे मुझसे…अलग न करो ! खुदा के लिए मुझसे अलग मत करो !

'उंगलियां…उंगलियां…उठने दो उंगलियां। मुझे कोई चिन्ता नहीं…यह दुनियां चौराहा…फूटने दो मेरी जिन्दगी के तमाम भांडे……।

'मेरा जीवन नष्ट हो जायेगा ?…हो जाने दो…मुझे मेरा गोश्त वापस दे दो…मेरी आत्मा का यह टुकड़ा मुझसे मत छीनो' …

जानते यह कितना मूल्यवान् है···यह मोती है जो मुझे इन क्षणों ने प्रदान किया है···उन क्षणों ने जिन्होंने मेरे अस्तित्व के कई कण चुन-चुन कर किसी की पूर्ति की थी और मुझे अपने विचार में अपूर्ण छोड़कर चले गये थे···मेरी पूर्ति आज हुई है।

'मान लो··· मान लो··· मेरे पेट के रिक्त स्थान से पूछो। मेरी दूध भरी हुई छातियों से पूछो। उन नलियों से पूछो जो मेरे अंग-अंग और रोम-रोम में तमाम झिरझिरी सुला कर आगे बढ़ रही हैं उन भूलनों से पूछो जो मेरे सपनों में डाले जा रहे हैं।

'मेरे चेहरे के पीलेपन से पूछो जो औरत के इस लोथड़े के गालों की अपनी तमाम सुर्खियाँ चुराती रही हैं··· उन सांसों से पूछो जो चोरी छीपे उसे उसका हिस्सा पहुँचाते रहे हैं।

'ऊँगलियाँ ? उठने दो ऊँगलियाँ···मैं उन्हें काट दूँगी···और अथवा··· मैं ये ऊँगलियाँ उठाकर अपने कानों में ठूँस लूँगी। गूँगी हो जाऊँगी, बहरी हो जाऊँगी, अंधी हो जाऊँगी····· मेरा मांस मेरे संकेत समझ लिया करेगा···मैं उसे टटोल-टटोल कर पहचान लिया करूँगी।

'मत छीनो···मत छीनो इसे। यह मेरी कोख का सिन्दूर है। यह मेरी ममता की माथे की बिन्दिया है। मेरे पाप का कड़वा फल है। लोग इस पर थू थू करेंगे ?······मैं चाट लूँगी ये सब थूक·······समझकर माफ कर दूँगी।'

'देखो, मैं हाथ जोड़ती हूँ; तुम्हारे पांव पड़ती हूँ।

'मेरे भरे हुए दूध के बर्तन औंधे न करो···मेरे दिल के धुनके हुए खून के नर्म-नर्म गालों में आग न लगाओ। मेरी बाँहों के भूलनों की रस्सियाँ न तोड़ो। मेरे कानों को उन गीतों से वंचित न करो जो इसके रोने में मुझे सुनाई देते हैं।

'मत छीनो !···मुझसे अलग न करो। भगवान के लिए मुझे इससे अलग न करो।'

लाहौर—२१ जनवरी

मोची मण्डी में पुलिस ने एक नवजन्मी बच्ची को सर्दी से ठिठुरती सड़क के किनारे पर पड़ी हुई पाया और अपने कब्जे में ले लिया। किसी कठोर हृदयी ने बच्ची की गर्दन को मजबूती से कपड़े में जकड़ कर रखा था और नग्न शरीर को पानी से गीले कपड़े में बांध रखा था ताकि वह सर्दी से मर जाये। पर वह जीवित थी। बच्ची बहुत सुन्दर है—आंखें नीली हैं। उसे अस्पताल पहुँचा दिया है।